3. वही - 2.28

4. वही - 3.20

5. वही- 1.13

6. वही - 5.30

7. वही - 2.25

8. वेणीसंहार - डॉ. रमाशंकर त्रिपाठी, पृ. 104

9. वही, 3.15

10. वही, पृ. 130

11. वही, 3.33

12. वही, 3.41

13. वही, 5.3

14. वही, पृ. 132

15. वही, पृ. 252

16. वही, 6.28

17. वही, 6.37

18. वही, पृ. 144

19. वही, 3.36

20. वही, 3.37

21. वेणीसंहार - 1.24

22. वही, 1.25

23. वेणीसंहार - 1.22

24. वही, 2.9

25. वही, 2.14-15

10

वेणीसंहार में शिवत्व भाव

दिव्या

शिव का अर्थ कल्याण शुभ भाव, शुभ विचार के रूप में ग्रहण किया जाता है। इसी रूप में साहित्य को भी शिव भाव के रूप में माना जाता है। आचार्य मम्मट इसी अभिप्राय से शिवेतर-क्षतये की बात करते हैं। भट्टनारायण के वेणीसंहार में भी अनेक स्थलों पर शिवत्व भाव का दर्शन होता है। सभी पात्र इसी भाव में मण्डित हैं। 'वेणीसंहार' नाटक के सभी पात्र महाभारत के लोकप्रसिद्ध पात्र हैं। इनके चरित्र के माध्यम से महाकवि भट्टनारायण ने लोककल्याणकारी तत्वों को उजागर किया है। पुरुषपात्रों में श्रीकृष्ण, युधिष्ठिर, भीम, सहदेव, दुर्योधन, अश्वत्थामा, कृपाचार्य, कर्ण, जयद्रथ, धृतराष्ट्र, संजय, वृषसेन, सुन्दरक आदि प्रमुख पात्र हैं। स्त्रीपात्रों में द्रोपदी, भानुमती, गान्धारी, सुवदना, तरलिका, बुद्धिमतिका, जयद्रथ की माता आदि प्रमुख हैं। उनकी चारित्रिक विशेषताओं या गुणों के आधार पर इस नाटक में विद्यमान शिवतत्त्व का अवलोकन किया जा सकता है।

जब पाण्डवों की ओर से सन्धिप्रस्ताव लेकर श्रीकृष्ण दुर्योधन के शिविर में जाते हैं तब दुर्योधन सन्धिप्रस्ताव को ठुकराकर उन्हें बाँधने का प्रयत्न करता है तो उस समय महाकवि भट्टनारायण हमें भगवान् श्रीकृष्ण के विराट् स्वरूप का दर्शन कराते हैं -

आत्मारामा विहितरतयो निर्विकल्पे समाधौ
ज्ञानोत्सेकाद्विघटिततमोग्रन्थयः सत्त्वनिष्ठाः।
यं वीक्ष्यन्ते कमपि तमसां ज्योतिषां वा परस्तात्
तं मोहान्धः कथमयममुं वेत्ति देवं पुराणम्।।[1]

धर्मराज युधिष्ठिर के अत्यन्त ही उद्दात्त चरित्र को महाकवि ने प्रस्तुत किया है। वे धीरोद्दात्त नायक के गुणों से युक्त शान्तिप्रिय, न्यायप्रिय, भातृवत्सल, वीर तथा पराक्रमी हैं, जो भारतीय समाज के लिए प्रेरक होने के कारण लोककल्याणकारक हैं। पंचम अंक में धतृराष्ट्र एवं दुर्योधन के वार्तालाप से उनकी भ्रातृवत्सलता परिलक्षित होती है- 'वत्स! श्रुयतां' प्रतिज्ञा युधिष्ठिरस्य। **नाहमेकस्यापि भ्रातुर्विपत्तौ प्राणान् धारयामिति'**।[2] उनके हृदय में अपने भाईयों के प्रति अगाध प्रेम है। वे शान्तिप्रिय, युद्ध की अपेक्षा सन्धि के अधिक पक्षपाती तथा स्नेह सम्पन्न हृदय से युक्त थे, जैसा कि भीमसेन की निम्नलिखित उक्तियों से ज्ञात होता है -

तथाभूतां दृष्ट्वा नृपसदसि पाञ्चालतनयां
वने व्याधैः सार्धं सुचितमुषितं वल्कलधरैः।
विराटस्यावासे स्थितमनुचितारम्भ निभृतं
गुरुः खेदं खिन्ने मयि भजति नाद्यापि कुरुषु।।[3]

और भी-

प्रवृद्धं यद्वैरं मम खलु शिशोरेव कुरुभि-
र्न तत्रार्यो हेतुर्न भवति किरीटी न च युवाम्।
जरासन्धस्योरः स्थलमिव विरुढं पुनरपि
क्रुधा सन्धिं भीमो विघटयति यूयं घटयत।।[4]

वे अत्यन्त ही न्यायप्रिय थे, उनकी न्यायप्रियता का ज्ञान निम्नलिखित श्लोक से होता है -

इन्द्रप्रस्थं वृकप्रस्थं जयन्तं वारणावतम्।
प्रयच्छ चतुरो ग्रामान्कञ्चिदेकं न पञ्चमम्।।[5]

न्यायप्रिय तथा शान्तिप्रिय होते हुए भी वे एक पराक्रमी, वीर क्षत्रिय थे। रक्तरनिञ्जत भीम को देखकर दुर्योधन का भ्रम हो जाने के कारण उनका क्षत्रियत्व जागृत हो जाता है। भीमसेन को दुर्योधन समझकर वे उनसे लड़ने के लिए सन्नद्ध हो जाते हैं, वे कहते हैं - **'कः कोऽत्र भोः। सनिषङ्गं धनुरुपनय। कथं न कश्चित्परिजनः। भवतु, बाहुयुद्धेन गाढ़मालिङ्गय ज्वनमभिपातयामि'**।[6] भीमसेन धीरोद्धत प्रकृति के नायक हैं।

मायापरः प्रचण्डश्चपलोऽहंकार दर्पभूयिष्ठः।
आत्मश्लाघानिरतो धीरैर्धीरोद्धतः कथितः।।[7]

के अनुसार आत्मप्रशंसा, क्रोध, मात्सर्य, परोत्कर्षा सहिष्णुता आदि धीरोद्ध नायक के गुणों से युक्त होते भी दृढ़प्रतिज्ञ, उत्साही, वीर, सहिष्णुता, शालीनता, भातृप्रेमी, धर्मविवेक, नीतिवेत्ता आदि लोककल्याणकारक सद्‌गुणों से युक्त हैं, जो समाज के लिए आदर्श है। वह द्रोपदी के अपमान का बदला लेने के लिए दृढ़प्रतिज्ञ है। युद्धिष्ठिर के द्वारा श्रीकृष्ण के माध्यम से सन्धि की बात सुनकर वह बौखला उठता है। अग्रज युधिष्ठिर के प्रति आक्रोश व्यक्त करता हुआ, कौरवों के द्वारा किये गये अपमान का स्मरण करता हुआ, प्रतिशोध की आग में जलता हुआ इस नाटक के प्रथम अंक में दुर्योधन की जङ्घाओं को तोड़ने तथा दुःशासन के वक्षस्थल से रक्तपान करने तथा कौरवों का समूलनाश करने की प्रतिज्ञा करता है -

मथ्नामि कौरवशतं समरे न कोपात्-
दुःशासनस्य रुधिरं न पिबाम्युरस्तः।
सञ्चूर्णयामि गढ़या न सुयोधनोरु
सन्धिं करोतु भवतां नृपतिः पणेन।।[8]

बार-बार द्रोपदी को अपनी प्रतिज्ञा का स्मरण कराकर आश्वस्त भी करता है- **रूतंसयिष्यति कचांस्तव देवि भीमः'।**[9] अपनी प्रतिज्ञा को पूर्ण करने हेतु नाटक में वह आद्यन्त उद्योगशील रहता है, जो उनके उत्साही प्रकृति का परिचायक है। अन्ततोगत्वा दुर्योधन की जङ्घाओं को तोड़कर, दुःशासन के वक्षस्थल से रक्तपान कर तथा उनके रक्त से द्रौपदी के केश का संयमन कर वह अपनी प्रतिज्ञा की पूर्ति करता है, जो उनकी प्रबल इच्छाशक्ति तथा उनके दृढ़प्रतिज्ञ होने का प्रमाण है। साथ ही साथ इससे उनकी वीरता भी सूचित होती है।

क्रोधी तथा वीर होने पर भी वह अत्यन्त ही विवेक से कार्य करता है। क्रोधावेश के कारण उसे पास में खड़ी द्रौपदी का संज्ञान नहीं होता किन्तु बाद में उसकी उपस्थिति का संज्ञान होने पर उसकी उपेक्षा के लिए वह पश्चाताप भी करता है - **'देवि, बर्धितामषैरस्माभिरागतापि भवती नोपलक्षिता। अतो न मन्युं कर्तुमर्हसि'।**[10] वह सहिष्णुता, शालीनता आदि की भावनाओं से युक्त हैं। सन्धि प्रस्ताव को लेकर खिन्न होने पर भी वह प्रत्यक्ष रूप से कभी युद्धिष्ठिर का विरोध

नहीं करता है। पंचमअंक में अर्जुन के प्रति उनकी उक्ति -**'मूढ़ ! अनुलङ्घनीयः सदाचारः। न युक्तमनभिवाद्य गुरून् गन्तुम्। सञ्जय! पित्रेनमस्कृतिं श्रावय! अथवा तिष्ठ। स्वयमेव श्रावयावः।।**[11] वह पाँच पाण्डवों में से किसी एक के साथ युद्ध करने के लिए दुर्योधन को ललकारता है ताकि वह अपनी प्रतिज्ञा पूरी कर सके, जिससे उनके नीतिवेत्ता होने का पता चलता है, उनके चरित्र में विद्यमान सद्गुण सर्वथा ग्राह्य, प्रेरक एवं लोकोपदेशक है। सहदेव को इस नाटक में एक आज्ञाकारी, शिष्ट अनुज के रूप में चित्रित किया गया है। धुतराष्ट्र तथा गान्धारी के वात्सल्य प्रेम का जो इस नाटक में वर्णन हुआ है, वह अत्यन्त ही प्रभावशाली है।

दुर्योधन इस नाटक का प्रतिनायक है। अहंकारी, धूर्त, दम्भी स्वार्थी, कामी, दुष्ट, क्रूर, अविवेकी, छलप्रपञ्चशील, षड्यन्त्रकारी आदि अनेकानेक दुर्गुणों से युक्त है किन्तु अपने मित्र कर्ण के प्रति उसका स्नेह अत्यन्त ही प्रगाढ़ एवं प्रशंसनीय है। कृपाचार्य, अश्वत्थामा को सेनापति नियुक्त करने के लिए दुर्योधन को सुझाव देते हैं - **'राजन्! सुमहान्खलु द्रोणपुत्रेण वोढुमध्यवसितः समरभरः। तदहमेवं मुन्ये भवता कृतपरिकरोऽय- मुच्छेतुं लोकत्रयमपि समर्थः। किंपुनर्यौधिष्ठिरबलम्। अतोऽभिषिञ्चतां सैनापत्ये'**[12] किन्तु कृपाचार्य के सुझाव को वह अस्वीकार कर देता है - **'सुष्ठु युज्यमानमभिहितं युष्माभिः, किन्तु प्राक्प्रतिपन्नोऽमर्षोङ्गराजस्य'**।[13] अपनी मित्रता के निर्वाह हेतु अश्वत्थामा जैसे - अप्रतीम योद्धा का वह परित्याग कर देता है। अपने भाईयों के प्रति भी उनके हृदय में अगाध स्नेह है। वह अपने पिता धृतराष्ट्र, माता गान्धारी एवं संजय से कहता है -

एकेनाऽपि विनानुजेन मरणं पार्थः प्रतिज्ञातवान्
भ्रातृणां निहते शते विषहते दुर्योधनो जीवितुम्।
तंदुःशासनशोणिताशनमरिं भिन्नं गदाकोटिना,
भीमं दिक्षुं न विक्षिपामि कृपणः सन्धिं विदध्यामहम्।।[14]

अपनी पत्नी भानुमती के प्रति उसकी सच्ची अनुरक्ति प्रशंसनीय है। द्वितीय अंक में भानुमति दुःस्वप्न से भयभीत हो जाती है तब उसे समझाते हुए वह कहता है -

किं नो व्याप्तदिशां प्रकम्पितभुवामक्षौहिणीनां फलं,
किं द्रोणेन किमङ्गराजविशिखैरेवं यदि क्लाम्यसि।
भीरु भ्रातृशतस्य मे भुजवनच्छायासुखोपस्थिता
त्वंदुर्योधन केसरीन्द्रगृहिणी, शङ्कास्पदं किं तवः।।[15]

वह अत्यन्त ही स्वाभिमानी तथा अप्रतीम शौर्य से युक्त है। उसे सन्धि करना बिल्कुल भी स्वीकार नहीं है, युद्ध में वह अपने प्राण का परित्याग करना श्रेयस्कर समझता है। अतः अनेकानेक दुर्गुणों के विद्यमान होते हुए भी उसके चरित्र में कतिपय सद्गुण भी विद्यमान हैं, जिसे कल्याण कारक तत्व के रूप में देखा जा सकता है।

सूर्यपुत्र महारथी कर्ण प्रतिनायक दुर्योधन का मित्र होने के कारण प्रतिनायकोचित अहंकार, मात्सर्य, दम्भ, आत्मश्लाघा आदि दुर्गुणों से युक्त होते हुए भी पराक्रमी, वचन प्रतिपालक, आदर्श मित्र, वीरता आदि कुछ ऐसे भी उद्दात गुणों से युक्त है, जो प्रेरक है।

द्रोणाचार्य पुत्र अश्वत्थामा का चरित्र इस नाटक में पितृभक्त, कर्त्तव्यनिष्ठ, सहिष्णु, तेजस्वी, पराक्रमी, स्वाभिमानी, दृढ़प्रतिज्ञ, ओजस्वी- वक्ता आदि रूपों में चित्रित हुआ है। अपने पिता के प्रति उसके हृदय में अतिशय श्रद्धा, भक्ति व प्रेम है। अपने पिता की मृत्यु से आहत होकर वह प्राण त्यागने के लिए उद्यत हो जाता है - **'आर्य सत्यमेवेदं' किन्त्वति- दुर्वहत्वाच्छोकभारस्य न शक्नोमि तातविरहितः क्षणमपि प्राणान्धारयितुम्'।**[16] कर्ण के द्वारा अपने पिता पर लगाये गए आक्षेप **'एवं किलस्याभिप्रायो यथाऽश्वत्थामा मया पृथ्वीराज्येऽभिषेक्तव्य इति। तस्याभावाद् वृद्धस्य ब्राह्मणस्य वृथा शस्त्रग्रहणमिति तथा कृतवान्'**[17] के कारण कर्ण की भर्त्सना करता है तथा सेनापति बनकर पाण्डवों से बदला लेना चाहता है किन्तु दुर्योधन उसे सेनापति नहीं बनाता है। वह कर्णवध तक युद्ध न करने की प्रतिज्ञा करता है किन्तु दुःशासन पर आक्रमण की सूचना पाकर अपनी स्वामिभक्ति के कारण वह उसे बचाने के लिए शस्त्र उठाने के लिए उद्यत हो जाता है किन्तु आकाशवाणी के द्वारा वह वारित कर दिया जाता है। कर्णवध के बाद दुर्योधन की रक्षा हेतु एक बार पुनः वह युद्ध के लिए उद्यत होता है किन्तु दुर्योधन से सम्मान न पाकर वह रूक जाता है। इस प्रकार उनके चरित्र में स्वामी भक्ति, पितृभक्ति, सहिष्णुता आदि प्रेरक सद्गुण विद्यमान हैं, जो भारतीय समाज के लिए आदर्श स्वरूप है।

पाञ्चाल राजपुत्री, पाण्डव वधू द्रोपदी इस नाटक की नायिका है, वह एक श्रेष्ठ क्षत्राणी के रूप में इस नाटक में चित्रित हुई है। उसका यह दृढ़ संकल्प है कि

जब तक उसके अपमानकर्त्ताओं दुर्योधन और दुःशासन के रक्त से उसकी वेणी नहीं सॅवारी जाएगी तब तक वह उसे खुली ही रखेगी। उसे विश्वास है कि भीम ही उसके अपमान का बदला ले सकता है - **'नाथ, न लज्जन्त एते। त्वमपि तावन्मा विस्मार्षीः'।**[18] भीमसेन की भॉति उसे भी सन्धि सहन नहीं है। भानुमती जब उसके केश बाधने को लेकर व्यङ्ग्य करती है तो उसके दुर्व्यवहार से वह बहुत दुःखी होती है तथा चेटी के माध्यम से उस व्यङ्ग्य वृतान्त से भीमसेन को अवगत कराकर उसे युद्ध के लिए प्रेरित करती है। एक श्रेष्ठ भारतीय क्षत्राणी के रूप में वह स्तुत्य है। भानुमती प्रतिनायक दुर्योधन की पत्नी, धर्म के प्रति आस्था रखने वाली, सच्चित्र पतिव्रता नारी है।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है महाकवि भट्टनारायण ने 'वेणीसंहार' नाटक में पात्रें के चरित्र के माध्यम से पितृभक्ति, स्वामिभक्ति, भ्रातृप्रेम, वात्सल्यप्रेम, सख्यप्रेम, पातिव्रतधर्म, सहिष्णुता, शान्तिप्रियता, न्यायप्रियता, दृढ़प्रतिज्ञ (किसी कार्य के प्रति प्रबल इच्छाशक्ति) आदि अनेकानेक लोककल्याणकारक सद्गुणों से समाज को अवगत कराकर सद्गुणों के ग्रहण हेतु समाज को प्रेरित किया है। लोककल्याणकारकतत्त्व ही शिवतत्व है। अतः कहा जा सकता है कि साहित्य समाज का दर्पण होता है, प्रतिबिम्ब, प्रतिरूप तथा प्रतिच्छाया होती है। परोक्षतः हम कह सकते हैं कि जैसा साहित्य होगा, वैसा समाज होगा तथा जैसा समाज होगा वैसा मानव जीवन होगा। महान् साहित्य लोककल्याणकारक होता है, साहित्य के अन्तर्गत काव्य, नाटक आदि सभी का समावेश हो जाता है।

संदर्भ -

1 वेणीसंहार, 1/23

2. वही, 5/पृष्ठ- 262 (व्याख्याकार - डॉ. बालगोविन्द झा)

3. वही, 1/19

4. वही, 1/10

5. वही, 1/16

6. वेणीसंहार- 6/पृष्ठ - 387 (व्याख्याकार-डॉ. बालगोविन्द झा)

7. साहित्यदर्पण - 3/33 पृष्ठ-15 (व्याख्याकार -आचार्य शेषराज शर्मा रेग्मी)

8. *वेणीसंहार - 1/15*

9. *वही, 1/21*

10. *वही, 1/पृष्ठ - 39 (व्याख्याकार - डॉं. बालगोविन्दा झा)*

11. *वही, 5/पृष्ठ - 286 (व्याख्याकार -डॉं. बालगोविन्द झा)*

12. *वही, 3/पृष्ठ - 174 (व्याख्याकार -डॉं. बालगोविन्द झा)*

13. *वही, 3/पृष्ठ -174 (व्याख्याकार -डॉं. बालगोविन्द झा)*

14. *वही, 5/7*

15. *वही, 2/17*

16. *वही, 3/पृष्ठ -152 (व्याख्याकार -डॉं. बालगोविन्द झा)*

17. *वही,3/पृष्ठ - 166 (व्याख्याकार -डॉं. बालगोविन्द झा)*

18. *वही, 1/पृष्ठ - 39 (व्याख्याकार -डॉं. बालगोविन्द झा)*

11

वेणीसंहार में मानवेतर प्रवृत्ति

चन्द्र किशोर शास्त्री

संस्कृत नाटकों में मानवेतर पात्रों के विविध कार्यों का वर्णन किया जाता रहा है। उसी परम्परा के रूप में भट्टनारायण द्वारा राक्षस राक्षसी आदि मानवेतर प्राणियों के कार्यों को दर्शाया गया है। मानवी क्रियाकलाप से तो सभी परिचित होते हैं लेकिन भट्टनारायण के द्वारा मानवेतर मनुष्यों का जो वर्णन किया गया है वह अद्भुत है। कवि सदैव अपने समय की बात करता है। राक्षस, पिशाच आदि अनेक पात्र ऐसे होते हैं जिनका कार्य व्यवहार सबसे अलग होता है। खान-पान भी अलग होता है।

महाभारत का युद्ध भी मानव की स्वार्थलिप्सा और महत्त्वाकांक्षा का परिणाम था, जिससे पर्यावरण प्रदूषित हुआ है। ऐसा कहा जाता है कि आज भी कुरुक्षेत्र (जहां महाभारत का युद्ध हुआ था) की मिट्टी रक्त वर्ण की है। महाभारत की घटना पर आधारित वेणीसंहार के तृतीय अंक में कविवर भट्टनारायण ने पर्यावरण-प्रदूषण को नियंत्रित करने की कल्पना से राक्षस और राक्षसी का संयोजन किया है, जिनका प्रसंग निम्नवत् है-

तृतीय अंक के प्रारम्भ में प्रवेशक में विकृत वेष वाली राक्षसी प्रवेश करती है। राक्षसी भयंकर हँसी हँसकर सन्तोष से कहती है कि युद्ध में मारे गये मनुष्यों के मांस के ढेर से हजारों घड़े भर गये हैं। मैं दिन-रात रुधिर पी रही हूँ। युद्ध सौ वर्षों तो होवे-

हतमानुषमांसभारके कुम्भसहस्त्रं वसाभिः संचिते।
अनिशं च पिबामि शोणितं वर्षशतं समरो भवतु।।[3]

राक्षसी नाचती हुई सन्तोष के साथ कहती है कि यदि सिन्धुराज के वध वाले दिन के समान अर्जुन युद्ध कर्म प्रतिदिन करने लगे, तब तो मांस तथा रुधिर से परिपूर्ण कोष्ठागार वाला मेरा घर हो जायेगा। (घूमकर चारों ओर देखकर) न जाने

रुधिर प्रिय कहाँ होगा ? अच्छा इस युद्ध में प्रियतम रुधिर प्रिय को ढूंढ़ती हूँ। (घूमकर अच्छा पुकारती हूँ। अरे रुधिरप्रिय! इधर आओ, इधर आओ।

अर्जुन ने जयद्रथ का वध कर दिया है। युद्धक्षेत्र में सर्वत्र मांस, रुधिर, चर्बी आदि फैले हुए हैं। राक्षसी रुधिर आदि देखकर अत्यन्त प्रसन्न होती हैं और हजारों घड़े भरकर अपने घर में रख लेती है। वह प्रार्थना करती है कि यह युद्ध सौ वर्षों तक ऐसे ही चलता रहे जिससे उसे कभी रक्त, मांस आदि की कमी न हो और वह भूखी न रहे। इस प्रकार यहाँ निम्न बातें सामने उपस्थित होती हैं-

1. राक्षसी युद्ध में मारे गये मनुष्यों के रक्त मास आदि के सेवन से तृप्त होकर अत्यधिक प्रसन्न है।
2. युद्धक्षेत्र के भयंकर दृश्य से सूचित हो रहा है कि जयद्रथ वध के दिन भयानक युद्ध हुआ है।

'प्रस्तुत स्थल पर राक्षसी द्वारा युद्ध में मारे गये मनुष्यों के रक्त-मांस आदि के सेवन से पर्यावरण-प्रदूषण को नियंत्रित करने की कल्पना की गयी है'' । उसके पश्चात् पूर्वोक्त प्रकार के थकान का अभिनय करता हुआ राक्षस प्रवेश करता है।

राक्षस - यदि शीघ्र ही मारे गये जनों का मांस और गर्म रक्त प्राप्त हो जाए तो यह मेरी थकावट थोड़ी देर में ही शीघ्र नष्ट हो जाये -

राक्षस नाटयन् प्रत्यहतानां मांसं यद्युष्णं रुधिरं च लभ्येत।
तदेव मम परिश्रमः क्षणमात्रमेवलघु नश्येत्।।[4]

युद्ध क्षेत्र में भयंकर संग्राम हुआ है। चारों ओर मरे हुए लोग पड़े हैं। माँस, रक्त आदि से पृथ्वीतल भर गया है। मरे हुए लोगों का गर्म खून देखकर राक्षस के मुँह में पानी आ जाता है और वह कहता है कि यदि शीघ्र ही मारे गये लोगों का माँस और खून मिल जाये तो उसकी थकान क्षणमात्र में ही दूर हो जाये।

यहां- युद्ध क्षेत्र में सहस्रों लोग मारे गये हैं। राक्षस आदि लोगों का ताजा खून देखकर उसे पीने की इच्छा करते हैं। राक्षस की उस गर्म खून को पीकर थकान नष्ट हो जायेगी ऐसी अभिलाषा राक्षस कर रहा है। ''राक्षस आदि लोगों का ताजा खून देखकर उसे पीने की इच्छा करते हैं'' इस वाक्य से अभिव्यञ्जित होता है कि- ''शीघ्र मरे हुए व्यक्तियों के शव और खून यदि साफ कर दिया जाए तो पर्यावरण-प्रदूषण कम होगा'' ।

राक्षसी पुनः चिल्लाती है, तब राक्षस- सुनकर, अरे! कौन मुझे पुकार रही

है। देखकर- अरे! क्या मेरी प्रिया वसागन्धा। निकट जाकर- हे वसागन्धे! मुझे क्यों बुला रही हो...?

हे रक्त रूपी मदिरा को पीने के कारण मतवाली तथा युद्ध स्थल में पर्याप्त समय तक विचरण करने वाली प्रिये! तुम मुझे किस प्रयोजन से पुकार रही हो। युद्ध में हजारों मनुष्य मारे गये हैं। ऐसा सुना जा रहा है-

रुधिरासवपानमत्तिके ! रणहिण्डनस्खलद् गत्रिके ।
शब्दायसे कस्मान्मां क्ष्रिये ! पुरुषसहस्त्रं हतं श्रूयते।।[5]

धर्माचार्यों, धर्मग्रन्थों एवं जनसाधारण की ऐसी धारणा है कि राक्षसों का प्रिय भोजन मनुष्यों का मांस, रक्त और वसा अर्थात् चर्बी होती है। वे मानवभक्षी होते हैं। युद्ध उनके उत्सव का कारण होता है। युद्ध के समय वे राक्षस इस कारण प्रसन्न होते हैं कि उन्हें भरपेट मानव का माँस, रक्त और वसा बिना प्रयास किये प्राप्त हो जाती है। वे भविष्य के लिए भी इन पदार्थों का संचय करके रख लेते हैं। रुधिरप्रिय राक्षस की पत्नी वसागंधा इसी कारण परम प्रसन्न है और अपने पति को बुलाती है। पति रुधिरप्रिय को मालूम है कि वसागंधा मानवों की रुधिररूपी मदिरा को पीकर मतवाली हो गयी है। जो दशा अधिक मदिरा पीने वाले की होती है, वही इस समय वसागंधा की है। वह मानवों का रुधिर एवं वसा पीने तथा मांस खाने के लिए युद्ध क्षेत्र में बहुत समय से घूम रही है।

इस प्रकार अधोलिखित बिन्दु सामने आते हैं-

1. राक्षस मांस आदि की खोज में इधर-उधर घूम रहा था, इस कारण उसे थकान हो गयी थी। अब युद्ध क्षेत्र में हजारों मरे हुए लोगों का मांस, रक्त आदि देखकर उसकी थकावट दूर हो गयी और वह प्रसन्न हो गया।
2. 'पुरुषसहस्रं' से यह सूचित हो रहा है कि युद्ध में मारे गये लोगों की संख्या हजारों में है। राक्षस जाति को इससे प्रसन्न होना स्वाभाविक है।

''युद्ध में बहुत से लोग मारे जाते हैं और उनके शव जहाँ-तहाँ पड़े रहते हैं। राक्षस मांस आदि की खोज में इधर-उधर घूम रहा था, इस कारण उसे थकान हो गयी थी''। इस वाक्य से अभिव्यञ्जित होता है कि- ''कविवर भट्टनारायण ने पर्यावरणीय दृष्टिकोण से यहां शवों के दाह-संस्कार आदि की कल्पना की है''।

इसी क्रम में राक्षस और राक्षसी का संवाद शुरू होता है। जिसके सम्वन्ध में इस प्रकार कहा गया-

राक्षसी- अरे रुधिरप्रिय! वास्तव में मैं यह तुम्हारे कारण तत्काल मारे हुए किसी राजर्षि के शरीरावयवों से निकाला गया, अधिक वसा के कारण स्निग्ध थोड़ा-थोड़ा गरम नया रुधिर लाई हूँ। इसलिए इसे पी लो।

राक्षस- (सन्तोष के साथ) अच्छा वसागन्धे! अच्छा! तुम्हारे द्वारा अच्छा किया गया। मैं अत्यधिक प्यासा हूँ। अतः ले आओ।

राक्षसी- अरे रुधिरप्रिय! इस प्रकार मारे गये मनुष्यों, हाथियों तथा घोड़ों के रक्त तथा चर्बी के सागर के कारण कठिनता से संचरण योग्य युद्धक्षेत्र में भी तुम प्यासे हो, यह तो बड़ा आश्चर्य है।

राक्षस- (क्रोध के साथ) अरे सुस्थिते! निश्चित ही मैं पुत्र घटोत्कच के शोक से व्याकुल हृदय वाली स्वामिनी हिडिम्बा देवी को देखने के लिए चला गया था।

राक्षसी - हे रुधिरप्रिय! क्या अब भी स्वामिनी हिडिम्बा देवी का घटोत्कच की मृत्यु से उत्पन्न शोक शान्त नहीं हो रहा है।

राक्षस- हे वसागन्धे! उन्हें शांति कैसी ? केवल अभिमन्यु शोक से समान दुःख वाली सुभद्रा देवी और याज्ञसेनी (द्रौपदी) द्वारा किसी प्रकार धैर्य बँधाया जा रहा है।

राक्षसी- हे रुधिरप्रिय! यह हाथी के शिर रूपी कपाल में संचित उत्तम मांस रूपी व्यंजन को ग्रहण करो। रुधिर रूपी आसव को पीओ।

राक्षस- (वैसा करके) हे वसागन्धे! तुम्हारे द्वारा अब कितना रुधिर और उत्तम मांस इकट्ठा किया गया है।

राक्षसी- अरे रुधिरप्रिय ! पूर्वसंचित तो तुम जानते ही हो। तो नवसंचित सुन लो भगदत्त के रक्त से एक घड़ा, सिन्धुराज (जयद्रथ) की चर्बी से दो घड़े, द्रुपद मत्स्यराज भूरिश्रवा, सोमदत्त, बाह्लीक आदि राजाओं के रुधिर तथा चर्बी से खुले मुख वाले एक हजार भरे घड़े मेरे घर में हैं।

राक्षस- (संतोष के साथ, आलिंगन करके) अच्छा! सुगृहिणी अच्छा! तुम्हारे इस सुगृहिणी भाव से और स्वामिनी हिडिम्बा देवी के उपाय द्वारा आज मेरा जन्म भर का दारिद्र दूर हो गया है।

राक्षसी- हे रुधिरप्रिय! स्वामिनी द्वारा कैसा उपाय किया गया ?

राक्षस- हे वसागन्धे! आज मुझे स्वामिनी हिडिम्बा देवी ने बड़े सम्मान से बुलाकर कहा कि हे रुधिरप्रिय! आज से तुम्हें आर्यपुत्र भीमसेन के पीछे-पीछे युद्ध में घूमना चाहिए। अतः उनके पीछे-पीछे रहने पर मारे गये मनुष्यों की रक्त नदी के देखने से

नष्ट हुई भूख प्यास वाले व्यक्ति के समान यहीं मुझे स्वर्गलोक का आनन्द मिल जायेगा। तुम भी निश्चिन्त होकर रक्तमज्जा से हजारों घड़े भर लो।

राक्षसी- हे रुधिरप्रिय किस निमित्त कुमार भीमसेन के पीछे-पीछे घूमा जा रहा है।

राक्षस- हे वसागन्धे ! उन स्वामी वृकोदर के द्वारा दुःशासन का रुधिर पीने की प्रतिज्ञाकर ली गई है। जिससे हम राक्षसों के द्वारा प्रवेश करके रक्तपान करना चाहिए।

राक्षसी - (हर्ष के साथ) अच्छा स्वामिनि ! अच्छा! तुम्हारे द्वारा मेरे पति को शुभ कार्य में लगा दिया गया है।

(नेपथ्य में महान कलकल को दोनों सुनते हैं)

राक्षसी- (सुनकर, डर के साथ) अरे रुधिरप्रिय ! यह महान् कलकल शब्द कैसा सुनाईदे रहा है।

राक्षस- (देखकर) हे वसागन्धे। यह धृष्टद्युम्न के द्वारा द्रोण बालों को खींचकर तलवार से मारे जा रहे हैं।

राक्षसी- (हर्ष के साथ) हे रुधिरप्रिय ! आओ। हम भी चलकर द्रोणाचार्य का रुधिर पीते हैं।

राक्षस - (भय के साथ) हे वसागन्धे ! यह ब्राह्मण रक्त निश्चित ही गले को जलाता हुआ ही उतरेगा। अतः इससे क्या ?

(नेपथ्य में पुनः कलकल होता है।)

राक्षसी- हे रुधिरप्रिय! पुनः यह महान् कलकल सुना जा रहा है।

राक्षस- (नेपथ्य की ओर मुख करके, देखकर) हे वसागन्धे ! निश्चित ही यह अश्वत्थामा तलवार खींचकर इधर ही आ रहा है। कदाचित धृष्टद्युम्न के क्रोध के कारण हम लोगों को ही न मार बैठे। अतः आओ निकल चलें।

(दोनों निकल जाते हैं)

यहीं प्रवेशक समाप्त होता है।दो नीच पात्रें द्वारा रंगमंच पर प्रस्तुत न की गई अथवा प्रस्तुत न किये जाने योग्य (भूत, वर्तमान तथा भविष्य में घटने वाली) घटना की सूचना दिये जाने को प्रवेशक कहा जाता है। इसका प्रयोग दो अंकों के बीच में अंक के आदि में किया जाता है। आचार्य भरतमुनि द्वारा लिखा भी गया है -

हीनाभ्यामेव पात्रभ्यामङ्कादौ यत्प्रवर्तते।
प्रवेशकः स विज्ञेयः शौरसेन्यादिभाषया।।[6]

इस प्रकार हम निष्कर्ष रूप में कह सकते हैं कि कविवर भट्ट नारायण ने

महाभारत की घटना का आधार लेकर वेंणीसंहार नामक नाटक की रचना की और उसमें कल्पना सामर्थ के अनुरूप परिवर्तन करके प्रसंग का संयोजन किया है। नाटक के तृतीय अंक के प्रारंभ में कविवर ने प्रवेशक को उपस्थापित किया है, जिसमें वसागंधा नामक राक्षसी तथा रुधिरप्रिय नामक राक्षस का संयोजन किया है जो प्रकृति को अर्थात् पर्यावरण को संतुलित अथवा नियंत्रित करने की कल्पना है और जिसके द्वारा पर्यावरण को प्रदूषित होने से बचाने की कोशिश की है। यदि ऐसा न करते तो पर्यावरण प्रदूषित हो जाता और मानव-जीवन संकट से ग्रसित हो जाता, क्योंकि यह मानव जनित प्रदूषण था, इसलिए इसे नियंत्रित करना ही चाहिए था। यही बात तो उपनिषद् कहते हैं कि- इस ब्रह्मांड में जो कुछ भी स्थावर-जंगम जगत् है, वह सब ईश्वर से परिव्याप्त है। उसे त्याग पूर्वक उपभोग करना चाहिए, इसमें आसक्ति का भाव कथमपि उचित नहीं है-

ईशावास्यमिदं सर्वयंत्किञ्च जगत्यां जगत्।
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्यस्विद्धनम्।।[7]

अतः कविवर भट्टनारायण का पर्यावरणिक दृष्टिकोण स्पस्ट है। वे एक स्वस्थ पर्यावरण संतुलन की बात करते हैं। यहाँ पर यह भी ध्यान देने योगय है कि रक्तपान के द्वारा प्यास बुझाने की बात की गयी है। जिससे जलाभाव की ओर संकेत भी प्राप्त होता है। इस प्रकार कवि जल संकट की ओर ध्यानाकर्षित करते स्वस्थ पर्यावरण की कामना किया है।

संदर्भ -

1. *स्रोत : दैनिक जागरण, पृ-11, दिनांक : 27 जून, 2022*
2. *स्रोत : अवधारणा विन्दु, अन्तर राष्ट्रीय शोध-संगोष्ठी, विषय- भारतीय जीवन-दर्शन : वैश्विक पर्यावरण संतुलन के संदर्भ में। स्थान - लखनऊ, दिनांक-5 जून, 2022*
3. *वेंणीसंहार-3/1*
4. *वेंणीसंहार-3/2*
5. *वेंणीसंहार-3/3*
6. *नाट्यशास्त्र*
7. *ईशावास्योपनिषद् का.-1*

12

वेणीसंहार की नाट्यशास्त्रीय समीक्षा

प्रवीण कुमार

वेणीसंहार नाटक का कथानक महाभारतीय इतिवृत्त पर आधारित है। द्यूत सभा में दुःशासन द्वारा केश परामृष्ठ होने पर द्रोपदी ने प्रतिज्ञा की थी कि दुःशासन एवं दुर्योधन के वध के अनन्तर ही वह अपनी वेणी (केशों की चोटी) संहार (संयमन) करेगी या बाँधेगी। वेणीसंहार 6 अंकों में निबद्ध है, इसमें मुखादि पञ्च सन्धियों का भी सुन्दर समन्वय हुआ है पञ्च प्रकृतियों और पञ्च कार्यावस्थाओं से युक्त होकर ही पञ्च संधियों का निर्माण होता है-

अर्थप्रकृतयः पञ्च पञ्चावस्थासमन्विताः।
यथासंख्येन जायन्ते मुखाद्याः पञ्च संध्यः।।[1]

नाटक के प्रथम अंक में ही भीम की प्रतिज्ञा से मुख संधि का प्रारम्भ हो जाता है। 'वेणीसंहार' नाटक में प्रतिमुख संधि का प्रयोग द्वितीय अंक में प्राप्त होता है। यहाँ क्रोध रूपी बीज का भीष्म आदि सेना नायकों के बध द्वारा कुछ-कुछ लक्ष्य तथा कर्ण आदि के बध न होने के कारण कुछ अलक्ष्य रूप में प्रगट होनी ही प्रमुख संधि गर्भसंधि का प्रयोग वेणीसंहार नाटक के तृतीय एवं चतुर्थ अंक में किया गया है। विमर्श संधि का नाटक पञ्चम अंक में प्रयोग हुआ है और षष्ट अंक पूर्णतः निर्वहन संधि से सम्बन्धित है।

चञ्चद्भुजभ्रमितचण्डगदाभिघातसञ्चूर्णितोयुगलस्य सुयोधनस्य।
स्त्यानावनद्धघनशोणितशोणपाणिरुत्तंसायेष्यति कचास्तव देवि भीमः।।[2]

अर्थात् हे देवि द्रोपदी अपने चञ्चल भुजदण्डों से घुमायो हुयी गदा के भीषण प्रहार से दुर्योधन की जंघाओं को चूर-चूर करके उसके गाढ़े रक्त से सने हाथों से यह भीम सेन तुम्हारे केशों को संवारेगा।

नाटक में कम से कम 5 और अधिक से अधिक 10 अंक होना चाहिए। वेणी संहार में 6 (छह) अंक है तो इस से भी यह अंक गणना की कसौटी में खरा उतरता है। जैसे श्रव्य काव्यों का चिन्ह सर्ग विभाग है वैसे दृश्य काव्यों (नाटकों) का चिन्ह अंक विभाग है।

पात्र एवं चरित्र चित्रण की दृष्टि से वेणीसंहार उच्च कोटि का नाटक है इसके लगभग सभी प्रमुख पात्र इतिहास प्रसिद्ध एवं उच्चकुलीन है वेणीसंहार में पात्रों का चरित्र बड़े ही युक्तिसंगत दृष्टि से चित्रित किया गया है। प्रत्येक का चरित्र समुचित रूप से प्रस्फुटित हुआ है और नाटकीय घात-प्रतिघात में अपनी विशिष्टता को संजोये हुए हैं। एक ओर अमर्षी भीम है तो दूसरी ओर ईर्ष्याकषायित दुर्योधन, एक ओर द्रौपदी है तो दूसरी ओर भानुमती, कर्ण, अश्वत्थामा, संजय, कृष्ण, युधिष्ठर आदि पात्र सभी अपनी अपनी विशेषताएँ करते हैं। वेणीसंहार की संवाद योजना भी अद्वितीय है। प्रस्तुत उदाहरणों में उच्चकोटिक संवाद योजना दृष्टव्य है-

अर्जुन - आर्य, प्रसीद। न युक्तं पुत्र शोक पीडितौ पितरौ पुनरस्मद-दर्शनेन भृशमुद्वेलयितुम्। तद्गच्छावः।[3] आर्य प्रसन्न हो, पुत्र के दुःख से दुःखी इन माता-पिता को अपने दर्शन से पीड़ा देना अधिक उचित नहीं है।

भीम- मूढ़ 'अनुल्लङ्घनीयः, सदाचारः[4] न युक्तम-मनभिवाद्य गुरुन् गन्तुम्। मूर्ख शिष्टाचार का उल्लंघन नहीं करना चाहिये, इसलिए इन गुरुओं का अभिवादन किये बिना चले जाना अनुचित होगा। वेणीसंहार की भाषा शैली सरस एवं बोधगम्य है। वेणीसंहार में गोड़ी रीति एवं ओज गुण के साथ प्रसाद गुण मणिकांचन संयोग प्रस्तुत करता है। भाषा का लालित्य और माधुर्य गुण का सुन्दर प्रयोग अनुपम एवं दर्शनीय है- कुरु धनोरुपदानि शनैः शनैराये विमुञ्च गतिं परिवेपिनीम् सुतनु बहुलतोपपरिबन्धनं, मम निपीडयगाढ़मुरः स्थलम्।[5] अर्थात् हे निपीडजडघाओं वाली धीरे-धीरे पग रखो हे प्रिये लड़खगाती चाल को छोड़ो। हे सुन्दरी मेरे वक्षःस्थल की अपनी बाहुलता के ऊपर कण्ठ में बन्धन डालकर गाढ़ आलिंगन करो। कर्ण को प्रसाद गुणयुक्त उक्ति में कितना स्वाभिमान और तेजस्विता है-

सूतो वा सूत पुत्रो वा यो को वा भवाम्यहम
दैवायत्तं कुले जन्म मदायत्तं तु पौरुषम्।[6]

अर्थात् मैं चाहे सूत हूँ चाहे सूत का पुत्र हूँ अथवा जैसा कैसा भी हूँ जन्म तो कर्माधीन है, उसमें मेरा क्या वश? पर पराक्रम तो मेरे वश में है। आशा के

महत्व का कितनी सुन्दरता से प्रसाद गुणयुक्त शैली में वर्णन है कि भीष्म, द्रोण और कर्ण की मृत्यु के बाद शल्य पर विजय की आशा बँधी है-

'गते भीष्मे हते द्रोणे कर्णे च विनिपातते।
आशावलवती राजन, शल्यो जेष्यतिपाण्डवान्।।[7]

यह सञ्जय की उक्ति बहुत ही अनुकरणीय है। गौडी शैली का एक सुन्दर उदाहरण भीम की उक्ति में मिलता है-

मन्थायस्तार्णवाम्भः प्लुतकुहरचलन्मन्दरध्वानधीरः
कोणाधातेषु गर्जत्प्रलयघनघटान्योन्यसंघदृचण्डः
कृष्णाक्रोधाग्रदूतः कुरुकुलनिधनोत्पातनिर्धातवातः
केनास्मत्सिंहानाद प्रतिरसितसखो दुन्दुभिस्ताताडितोडयम्।[8]

अर्थात् समुद्र मंथन के समय मन्दराचल की ध्वनि के तुल्य गंभीर, प्रलयकालीन मेघों की घटाओं के संघर्ष से प्रचण्ड द्रौपदी के क्रोध का अग्रदूत, कौरवों के विनाश सूचक उत्पाद की प्रचण्ड वायु और हमारे सिंहनाद की प्रतिध्वनि के तुल्य इस नगाड़े को कौन बजा रहा है?

वेणीसंहार नाटक का प्रधान रस वीर है जो कि अद्वितीय रूप में वर्णित हुआ है। आदि से अन्त तक वीर रस का प्रवाह अजस्र रूप से प्रवाहित है यद्यपि बीच बीच में श्रृंगार रौद्र करुण आदि की भी सत्ता दृष्टिगत होती है। रसों की परिपाक की दृष्टि से वेणीसंहार उत्तम कोटि का नाटक बन गया है। भीम की उक्तियों में वीर रस की मनोहर अभिव्यक्ति हुई है-

मध्नामि कौरवशतं समरे न कोपाद्। दुःशासनस्य रुचिरं न पिबाम्युरस्तः।।
सं चूर्णयामि गदयान सुयोधनोरु। संधि करोतु भवतां नृपतिः पणेन।।[9]

भीम सहदेव से कहता है कि क्या मैं युद्ध में क्रोध से सौ कौरवों का वध नहीं करुँगा। क्या मैं दुःशासन की छाती का खून नहीं पियूँगा। क्या मैं गदा से दुर्योधन की जाँघ नहीं तोड़ूँगा। आपके राजा युधिष्ठिर सन्धि करते हैं तो करते रहें पर मैं सन्धि नहीं करुँगा।

इसी प्रकार दुर्योधन की भी उक्ति में वीर रस का सुन्दर वर्णन है-

कृष्टा केशेषु भार्या तव तव च पशोस्तस्योर्वा।
प्रत्यक्षं भूपतीनां यम भुवनपतेराज्ञया द्यूतदासी।
अस्मिमन्वैरानुबन्धे वद किमपकृतं तैर्हता ये नरेन्द्रा।
वाह्वोवीर्यातिरेकद्रविणगुरुमदं मामजित्वैव दर्पः।।[10]

हे भीम, तुम सभी पाण्डवों और राजाओं के सामने मेरी आज्ञा से द्रौपदी को बाल पकड़ के खींचा गया है। झगड़ा मुझसे है। अन्य राजाओं ने तुम्हारा क्या उपकार किया है जो उन्हें मारा है। मुझ महाबलशाली को बिना जीते ही तुम्हें इतना वर्ग है? द्वितीय अंक के कुछ श्लोकों में श्रृंगार रस की सुन्दर उद्भावना हुयी है।

प्रेमाबद्धस्मितयनाब्जशोभं, लज्जा योगादविशकथं मन्दमन्दस्मितं वा।
वक्त्रेन्दुं ते नियममुषिता लक्तकाग्राधरं वा, पातुंवाञ्छा परमसुलभं किनु दुर्योधनस्य।[11]

अर्थात् दुर्योधन भानुमती से कहता है कि प्रेम के कारण स्तिमित नेत्रों वाले तुम्हारे मुखचन्द्र कमल की शोभा जीत ली है लज्जा के कारण स्पष्ट शब्द नहीं निकल रहे हैं। नियम पालन के कारण अधरों से अलक्तक हट गया है ऐसे मन्द स्मितयुक्त तुम्हारे मुख चन्द्र का पान करना चाहता हूँ। मुख दुर्योधन के लिए अन्य क्या दुर्लभ है? यह दूसरा श्रृंगार का उदाहरण भी अत्यन्त मनोहर है, श्रृंगार की सुन्दर छटा दर्शनीय है-

न्यस्ता न भ्रकुटिर्न वाष्पसलिलैराच्छादिते लोचने।
नीतं नाननमन्यतः सशपथं नाहं स्पृशन्वारितः।
तन्व्या लग्नपयोधरं भयवशादाबद्धमालिङ्गितं।
भङ्क्तास्या नियमस्य भीषण मरुन्नायं वयस्यो नु मे।।[12]

अर्थात् यह आँधी तो सुयोधन के लिए अन्यन्त उपकारी सिद्ध हुई जिसकी कृपा से देवी (भानुमती) ने बिना परिश्रम के ही अपना नियम तोड़ दिया। जिससे मेरी अभिलाषा पूर्ण हो गई। क्योंकि प्रियतमा ने अपने नियमभंग के कोप से भौहें चढ़ाकर मेरी ओर नहीं देखा, अपने नेत्रों को अश्रुजल से पूर्ण नहीं किया और न तो मुख को ही दूसरी ओर किया। स्पर्श करते हुए मुझे (यदि आपने मुझे स्पर्श किया तो आपकी ही शपथ) इस प्रकार रोका तक नहीं। स्वयं भय से संत्रस्त होकर अपने दोनों सटे हुए कुचो द्वारा मेरा आलिङ्गन किया। इस प्रकार इसके समस्त नियमों को विध्वस्त करने वाला यह वायु भीषण नहीं किन्तु मेरा मित्र ही हुआ। अच्छा तो मेरा मनोरथ पूर्ण हुआ, क्योंकि मैंने इस विहार में अपना संभोग प्राप्त किया। वेणीसंहार के नायक के विषय में थोड़ा विप्रात्तिपत्ति दृष्टिगत होती है। कुछ लोग भीम को नाटक का नायक मानते है तो कुछ लोग युधिष्ठिर को नायक मानते हैं। पर भीम नायक मानना ज्यादा प्रासंगिक लगता है क्योंकि भीम की प्रतिज्ञा से ही नायक प्रारम्भ होता है और उसकी प्रतिज्ञा के साथ ही नाटक का अन्त होता है।

भीम के प्रतिज्ञा पूर्ण होने के बाद ही वेणी संहार (द्रौपदी के केशों का संयमन होगा) इस प्रकार सम्पूर्ण नाटक भीम के इर्द गिर्द ही घूमता है। बीज, आरम्भ मुख आदि अर्घप्रकृतियों, अवस्थाओं और संधियों में भीम ही मुख्य है। वेणीसंहार रूपी फलागम भी भीम को ही प्राप्त होता है और नाटक वीर रस प्रधान है वीर की साक्षात प्रतिमूर्ति भीम ही है। उपर्युक्त विवेचन के आधार पर हम कह सकते हैं वेणीसंहार उत्तम कोटि का नाटक है। संस्कृत नाटक साहित्य में अपनी प्रौढि, शास्त्रीय ज्ञान नाट्य नियमों का पुङ्खनुपुङ्खनुपालन के कारण भट्टनारायण ने अपना विशिष्ट स्थान बना लिया है। इनकी एकमात्र नाट्यकृति 'वेणीसंहार' संस्कृत साहित्य के रसिकों में चिरकाल से लोकप्रिय रही है और साहित्यशास्त्र के आचार्यों ने वेणीसंहार को प्रभूत मात्रा में उद्धृत कर उसकी प्रमाणिकता की है और नाट्यशास्त्रीय दृष्टि से एक आदर्श नाटक माना है। भट्टनारायण की गौडी रीति और वीर रस के निरूपण को भी सराहनीय माना गया है। किसी सहृदय ने कहा है-

ओजः संसूचकैः शब्दैः युद्धोत्साह प्रकाशकैः।
वेण्यायुज्जृम्भयन् गौडीं भट्टनारायणे बभौ।।[13]

संदर्भ –

1. *दशरूपकम्, 1/22*
2. *वेणीसंहार, 1/21*
3. *वही, 5/26-27*
4. *वही, 2/21*
5. *वही,*
6. *वही, 3/37*
7. *वही, 5/24*
8. *वही, 1/22*
9. *वही, 1/15*
10. *वही, 5/30*
11. *वही, 2/18*
12. *वही, 2/20*
13. *संस्कृत साहित्य का अभि. इतिहास, राधावल्लभ त्रिपाठी, पृ.323*

13

वेणीसंहार में श्रीकृष्ण

अवधेश कुमार

महाभारत में पांडव पत्नी द्रौपदी के चीर-हरण के समय श्रीकृष्ण की भूमिका उनके धर्मरक्षक स्वरूप का सुन्दर उदाहरण है। भट्टनारायण नारायण द्वारा विरचित संस्कृत नाटक 'वेणीसंहार' में 'महाभारत' की सम्पूर्ण युद्धकथा की त्रासदी को समाविष्ट किया गया है। नाटक की धुरी के रूप में श्रीकष्ण का विराट् व्यक्तित्व संचालक के रूप में अंतर्ध्वनित होता हुआ दिखाई पड़ता है, जो उनके दौत्य कर्म, धर्मरक्षा, न्याय स्थापना आदि के रूप में प्रकट होता रहता है। नाटक में श्रीकृष्ण के विराट् व्यक्तित्व की अंतर्ध्वनि प्रथम, तृतीय और चतुर्थ अंक में तो प्रतीत होती ही है, पर नाटक के छठें अंक के अन्तिम भाग में यह समधिक प्रखर हो जाती है, जहाँ श्रीकृष्ण मंच पर प्रकट होकर संचालक एवं निर्णायक की विराट् भूमिका निभाते हैं। 'तत्कथय महाराज, किमस्मात्परं समीहितं संपादयामि'।

'वेणीसंहार' नाटक का प्रारंभ नान्दीपाठ से होता है, जिसमें भट्टनारायण ने श्रीकृष्ण का उल्लेख कर उनके विराट स्वरूप की वंदना की है। यथा-

''निषिद्धैरप्येभिर्लुलितमकरन्दो मधुकरैः करैरिन्दोरन्तश्छुरित इव संभिन्नमुकुलः।
विधत्तां सिद्धि नो नयनसुभगामस्य सदसः प्रकीर्णः पृष्पाणां हरिचरणयोरंजलिरयम्।।1।।''[2]

अर्थात् इसमें हरिचरण के रूप में भगवान् वासुदेव के चरणों में समर्पित पुष्पांजलि के द्वारा सभासदों के आनंद की कामना की गयी है। जिसके मकरंद को बार-बार निवारण करने पर भी इन मधुकरों ने विखेर दिया है तथा सूर्य की किरणें इसके पुष्पों के भीतर प्रविष्ट होकर कलिका से पुष्प के रूप में परिणत कर दी है। इन सभासदों के नेत्रों के लिए आनन्ददायी अभिनय में हम लागों की सफलता का संपादन करें। इसी क्रम में नाटककार पुनः श्रीकृष्ण की महिमा का चित्रण राधा के माध्यम से लोकपोषक स्वरूप में करते हैं-

"कालिद्याः पुलिनेषु केलिकुपितामुत्सृज्य रासे रसं
गच्छन्तीमनुगच्छतोऽश्रुकलुषां कंसद्विषो राधिकाम्।
तत्पादप्रतिमानिवेशितपदस्योद्भूतरोमोद्गते-
रक्षुण्णोऽनुनयः प्रसन्नदयितादृष्टस्य पुष्णातु वः।।2।।"[3]

नाटक के प्रथम अंक में नान्दीपाठ के पश्चात् पांडवों तथा कौरवों में सन्धि कराने के लिये भगवान् श्रीकृष्ण ने दौत्य-कर्म को स्वीकार कर लिया है और कौरवों की सभा में जाने की तैयारी कर रहे हैं। इसी समय नाटक में नेपथ्य की ओर से सहसा सुनाई पड़ा कि- पाण्डवों के दूत बनकर भगवान कृष्णचन्द्र अब दुर्योधन के यहाँ कौरव-पाण्डवों में सन्धि कराने के लिए जा रहे हैं। यह सुनकर सूत्रधार प्रसन्न होकर कहने लगा कि, 'भगवान् का यह संधि-प्रयास सफल हो और पाण्डव लोग भगवान् कृष्ण के साथ प्रसन्न रहें तथा कौरव भी अपने कर्मचारियों के साथ स्वस्थ रहें।' इस दृश्य का वर्णन कुछ इस प्रकार अंकित है-

"मारिष ननु सर्वमेवेदानीं प्रतिहतममंगलं
स्वयम्प्रतिपन्न-दोत्येन सन्धिकारिणा कंसारिणा। यथा हि-
निर्वाणवेरदहनाः प्रशमादरीणां
नन्दन्तु पाण्डुतनयाः सह माधवेन।"[4]

श्रीकृष्ण, पाण्डवों की अंतर्मन में समाये हुए है और उनकी मति में श्रीकृष्ण ईश्वर हैं। श्रीकृष्ण की दिव्यता के प्रति पाण्डवों में अटूट विश्वास है। पांडवों को विश्वास है कि मधुसूदन अवश्य उन्हें उचित न्याय दिलाएंगे। इस आशा से श्रीकृष्ण दौत्य-कर्म की भूमिका में पांडवों की तरफ से पाँच गाँवों की शर्त पर संधि का प्रस्ताव लेकर कौरवों की सभा में जाते हैं। वहाँ श्रीकृष्ण के आने का सन्देश सुनकर सभा के लोग सम्मान में खड़े हो जाते हैं.

"कंचुकी- कुमार, एष खलु भगवान्वासुदेवः।
(सर्वे — तांछलयः समुत्तिष्ठन्ति।)
भीमसेनः- (ससम्भ्रम्।) कवासों भगवान।
कंचुकी- पाण्डवपक्षपातामरर्षितेन सुयोधनेन संयमितुमारब्धः।"[5]

कौरव सभा में भगवान् वासुदेव के प्रति सम्मान तथा पाण्डवों के प्रति पक्षपात से क्रुद्ध होकर दुर्योधन अपने सैनिकों के द्वारा उन्हें बंदी बनाने के लिए उद्यत हो जाता है। इस पर महात्मा योगीश्वर श्रीकृष्ण अपने विराट् विश्वरूप के

तेजपुंज की चकाचौंध से कौरवों को मूर्छित तथा तिरष्कृत करके पांडवों के शिविर में वापस चले आते हैं। यथा-

''आत्मारामा विहितरतयों निर्विकल्पे समाधो
ज्ञानोत्सेकाद्विघटिततमोग्रन्थयः सत्त्वनिष्ठाः।
यं वीक्षन्ते कमपि तमसां ज्योतिषां वा परस्तात्
तं मोहान्धः कथमयममुं वेत्ति देवं पुराणम्।।''[6]

इस घटना को सुनकर द्रौपदी और भीम ने युधिष्ठिर के प्रति आक्रोश व्यक्त कर उनके संधि प्रस्ताव का विरोध प्रकट करते हैं, तो ठीक उसी समय युधिष्ठिर योगेश्वर श्रीकृष्ण के अपमान से क्रोधित होकर युद्ध की घोषणा कर देते हैं। युद्ध की घोषणा को सुनकर भीम एवं सहदेव इत्यादि पांडव युद्धभूमि में प्रस्थान करने के लिए द्रौपदी से अनुमति लेते है।

नाटक के तृतीय और चतुर्थ अंक में श्रीकृष्ण की भूमिका एक संचालक के रूप में ध्वनित होती है। तृतीय अंक के दृश्य में कौरवों और पाण्डवों के बीच युद्ध में नरसंहार चल रहा है। इस युद्ध में समस्त लोक के आचार्य, धनुर्धारियों मे श्रेष्ठ, कौरव-पाण्डव पक्ष के गुरु, महामहा पराक्रमी द्रोणाचार्य कौरवों के सेनानायक बनकर अपने बाणों से पाण्डवों की सेना को परास्त कर दिये हैं। उनके दिव्य शस्त्रों के तेज से गाण्डीवधारी अर्जुन और अन्य पांडव वीर सैनिक युद्धस्थल से भाग जाने को विवश हो जाते हैं। सैनिकों में त्राहि-त्राहि की ध्वनि गूंज उठती है। इस विषम परिस्थिति को देखकर श्रीकृष्ण ने पांडवों से मिलकर एक अनूठी मंत्रणा करते हैं। इसके बाद युद्धस्थल में एक रणनीति से द्रोणाचार्य पुत्र महारथी अश्वत्थामा के मरने की झूठी अफवाह फैलाई गयी और इसकी पुष्टि धर्मराज युधिष्ठिर की अर्द्धउक्ति 'अश्वस्थामा हतः' को सुनकर द्रोणाचार्य निराश और स्तब्ध हो जाते हैं और इसी समय पांडव सैनिकों के द्वारा आचार्य द्रोण को मार दिया जाता है। अचंभित घटना से कौरवसेना नरसंहार के डर से रणस्थली से उस दिन युद्ध से भाग जाती है। इस प्रकार कृष्ण ने पांडव पक्ष से किये जा रहे धर्मयुद्ध की विजय प्राप्ति में सहायता करते हैं। सूत, द्रोणाचार्य के मरने की सूचना उनके पुत्र अश्वत्थामा को बताता है तो वह अपने पिता के मारे जाने पर कहता है कि मेरे पिता को ईश्वर के अलावा कोई दूसरा नहीं मार सकता है और यदि कोई अन्य उनकी हत्या की है तो अब उसे संसार में कोई नहीं बचा सकता है। वह सूत से प्रश्न भी करता है कि क्या श्रीकृष्ण

ने अपने सुदर्शन से उनका संहार किया है या कोई दूसरा। नाटक में इसका दृश्य कुछ इस प्रकार रेखांकित है- ''सूतः- कथमेवं भविष्यति।

अश्वस्थामा- गोविन्देन सुदर्शनस्य निशितं धारापथं प्रापितः। सूतः एतदपि नास्ति। अवस्थामा- शंके नापदमन्यतः खलु गुरोरेभ्यश्वतुर्थादहम्।।''[7]

नाटक के अंतिम छठें अंक में श्रीकृष्ण पुनः मंच पर प्रकट होकर निर्णायक की भूमिका निभाते हैं। इस अंक में जब दुर्योधन युद्ध में मारे जाने के डर से युद्धस्थल से भागकर कहीं छिप जाता है। तब श्रीकृष्ण उसे ढूंढने के लिए सारथी बनकर रथ चलाते हैं और अर्जुन एवं भीम रथ पर बैठकर निकल पड़ते हैं। इन्हें देखकर कौरवों की तरफ से लड़ने आये सैनिक घबराकर इधर-उधर भागने लगते हैं। इस पर भीम उन भृत्यों से कहते हैं कि हमसे डरने की आवश्यकता नहीं है। द्यूत-कपट करने वाला, लाक्षा गृह को जलाने वाला, अत्यधिक अभिमानी, द्रौपदी के केश और वस्त्रों के हरण करने वाला वह दुर्योधन किस जगह बैठा है? इसी बीच श्रीकृष्ण को एक तालाब के किनारे किसी व्यक्ति के पद-चिह्न दिखाई पड़ते हैं। भगवान् वासुदेव पांडव वीरों से कहते हैं कि- हे वीर! दुर्योधन जल-स्तम्भनी विद्या जानता है, इसलिए अवश्य ही वह तुम्हारे भय से इस जलाशय में बैठा होगा। ''अस्मिन्महतो·स्य सरसस्तोरे द्वपदपद्धति समवतीर्णप्रतिबिम्बे। तयौरेक-स्थलमुतीर्णा न द्वितीया। 'परत्र कुमार प्रमाणम्' इति। ततः ससम्भ्रमं प्रस्थिताः सर्वे वयं तमेव पुरस्कृत्य गत्वा च सरस्तीरं परिज्ञायमानसुयोधन पदलाच्छना पदवीमासाद्य भगवता वासुदेवेनोवक्तम्- 'भो वीर वृकोदर, जानाति किल सुयोधनः सलिलस्तम्भीं विद्याम्। तन्नूनं तेन त्वद्भयात्सरसीमेनामभिष्ययितेन भवितव्यम्'।''[8] श्रीकृष्ण के इस वचन को सुनकर, जलाशय में तीव्र प्रकम्पना उत्पन्न होती है तथा भयंकर गर्जना के साथ जल से अभिमानी दुर्योधन बाहर आकर भीम से गदायुद्ध लड़ता है। इस पर सभी पांडव अब आश्वस्त हो जाते हैं। तत्पश्चात् श्रीकृष्ण, युधिष्ठिर के पास दूत के माध्यम से संदेश भेजते हैं कि भीम एवं दुर्योधन का गदा युद्ध का आरंभ हो गया है और इस युद्ध में भीम की विजय निश्चित है। उन्होंने दूत के माध्यम से यह भी कहा है कि युधिष्ठिर अब राज्याभिषेक की तैयारी करें और द्रौपदी अपने वेणी-संहार का उत्सव मनाये। यथा-

''अहं च देवेन चक्रपाणिनादेवकाशमनुप्रेषितः। आह च देवो देवकीनंदनः। अपर्युषितप्रतिज्ञे च मारुतौ प्रनष्टे कौरवराजे महानासीन्नौ विषादः। सम्प्रति पुनर्भीमसेनेनासादिते।''[9]

भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं कि हे भीमसेन, जबसे तुमने दुर्योधन को मारने की प्रतिज्ञा की है और उसे पूर्ण होने तक दुर्योधन के भाग जाने से मुझे बड़ा दुख था। 'कृष्णः निगृहीतः स दुरात्मा नकुलेन। तत्कथय महाराज, किमस्मात्परं समीहितं सपादयामि।।' लेकिन अब भीम के द्वारा दुर्योधन का वध, हमारी चिंता को कम कर दिया है।

इसी बीच नाटकीय ढंग से कथावस्तु में नवीन परिवर्तन होता है। एक राक्षस, जो दुर्योधन का मित्र है वह चार्वाक मुनि का रूप धारण कर युधिष्ठिर के पास आता है और कहता है कि गदायुद्ध में भीमसेन मारे गए हैं। यह सुनकर द्रौपदी और युधिष्ठिर अतिशोक से व्याप्त होकर जीवन त्यागने के लिए तैयार हो जाते हैं। कुछ ही देर में रक्त से लथपथ भीम का आगमन होता है। युधिष्ठिर उसे दुर्योधन समझकर लड़ने के लिए शस्त्र धारण करते हैं और द्रौपदी को छिपाने का प्रयास करते हैं। लेकिन तब तक भीम, द्रौपदी के पास पहुँचकर उन्हें पकड़ लेते हैं। युधिष्ठिर उन्हें दुर्योधन समझकर युद्ध करना चाहते हैं, लेकिन शीघ्र ही उन्हें वास्तविकता का ज्ञान हो जाता है।

कृष्ण, युधिष्ठिर के समीप जाकर कहते हैं कि आपकी जय हो। आपने धर्मयुद्ध में विजय प्राप्त कर ली है। ''कृष्णः- (युधिष्ठिरमुपगम्य।) विजयतां निहतसकलारातिमण्डलः सानुजो युधिष्ठिरः।''[10] यह सुनकर युधिष्ठिर, भगवान वासुदेव को प्रणाम करते हैं और कहते हैं कि हे नारायण आप सृष्टि के संरक्षक और संहारक दोनों हैं। धर्मविजय की कार्यसिद्धि बिना आपके संभव नहीं था। आपने धर्मसंकट में पांडवों जनों की रक्षा की है। आपके विराट् व्यक्तित्व की के गुणों की महिमा विशिष्ट है, आपही हमारे परमात्मा हैं। युधिष्ठिर, भगवान् वासुदेव के प्रति अपने भाव को प्रकट करते हुए कहते हैं कि-

''कुतस्तस्य विजयादन्यद्यस्य भगवान्पुण्डरीकाक्षो नारायणः स्वयं मंगलान्याषास्ते। कृतगुरुमहदादिक्षोभसंभूतमूर्ति गुणिनमुदयनाषास्यथानहेतुं प्रजानाम्।''[11]

इसी क्रम में पुनः युधिष्ठिर कहते हैं कि प्रभु, मैं साधारण बुद्धि वाला पुरुष हूँ। आपके विराट् व्यक्तित्व का वर्णन करने में मैं असमर्थ हूँ। हे मधुसूदन, आप हम सभी से प्रसन्न हैं तो हमें यह आशीर्वाद प्रदान करने की कृपा करें। ''त्वं देवः पुरुषोतमः सुकृतिनं मामाद्यतो भाषसे किं नामान्यदतः परं भगवतो याचे

प्रसन्नादहम्।।45।।''[12] इसके पश्चात् भीमसेन, द्रौपदी की वेणी सजाते हैं और दूसरी तरफ कृष्ण और अर्जुन मंच पर आ जाते हैं और भरतवाक्य के साथ नाटक का सकुशल समापन होता है।

निष्कर्षतः 'वेणीसंहार' नाटक के अंतिम दृश्य में भगवान श्रीकृष्ण के विराट् व्यक्तित्व को रेखांकित करते हुए युधिष्ठर द्वारा कहा गया है कि हे प्रभु, आपकी प्रसन्नता से सर्वत्र संशयरहित विद्वतमंडल गुणविराही जनसमूह तथा पूर्णकर्मा समुदाय आदर को प्राप्त कर सकता है। आपकी भक्ति व्यक्ति को सर्वत्र संशयरहित करती है। यथा-

''अकृपणमतिः कामं जीव्याज्जनः पुरुषायुषं
भवतु भगवन्भक्तिर्द्वैतं बिना पुरुषोतमे।
दयितभुवनो विद्वद्वन्धुर्गुणेषु विशेषुवि-
त्सततसुकृती भूयाद् भूयः प्रसाधितमण्डलः।।''[13]

पाण्डवों के साथ द्रौपदी भींगे नयनों से श्रीकृष्ण से आशीर्वाद लेती हैं और विजयमंगल की घड़ी में युधिष्ठिर कौरवों से मुक्ति दिलाने वाले देवकीनंदन भगवत् पाद वासुदेव का स्वागत उत्सव करते हैं तथा उनके प्रति अपनी कृतज्ञता ज्ञापित करते हुए प्रणाम निवेदित करते हैं-

''युधिष्ठिरः- को ही नाम भगवता सन्दिष्टं विकल्पमपि?
कः कोऽत्र भीः। कंचुकी- आज्ञापयतु देवः।
युधिष्ठिरः- देवस्य देवकीनन्दनस्य बहुमानाटत्सस्य ये
विजयमंगलाय प्रवर्त्यन्तां तदुचिताः समारम्भाः।''[14]

इस प्रकार 'वेणीसंहार' नाटक के कथावस्तु में श्रीकृष्ण के विराट् व्यक्तित्व की झलक पदे-पदे दृष्टिगोचर होती है और पांडव विजय तथा कौरव पराजय में श्रीकृष्ण की उपस्थिति निश्चयात्मक रूप से अंतर्ध्वनित होती रहती है।

संदर्भ -

1. *'वेणीसंहार-नाटकम्', टीका, पंडित आदित्यनारायणपाण्डेय, प्रकाशक- चौखम्बा अमरभारती प्रकाशन, पोस्ट बाक्स- 138, के. 37/130, गोपाल मंदिर लेन,? वाराणसी - 221001, भारत, अष्टम संस्करण वि.सं. 2039, प्रथम अंक-1 पृ. 01*
2. *वहीं, प्रथम अंक, पृ. 03*

3. *वहीं, प्रथम अंक, पृ. 08*
4. *वहीं, प्रथम अंक, पृ. 35*
5. *वहीं, प्रथम अंक, पृ. 37*
6. *वही, तृतीय अंक, पृ. 109*
7. *वही, षष्ठ अंक, पृ. 254*
8. *वही, षष्ठ अंक, पृ. 262-263*
9. *वही, षष्ठ अंक, पृ. 323*
10. *वही, षष्ठ अंक, पृ. 324*
11. *वही, षष्ठ अंक, पृ. 328*
12. *वही, षष्ठ अंक, पृ. 329*
13. *वही, षष्ठ अंक, पृ. 264*

14

वेणीसंहार में पुरुष पात्र

ऋचा मुक्ता

वेणीसंहार नाटक की कथावस्तु महाभारत से ली गयी है किन्तु भट्टनारायण ने महाभारतीय युद्ध कथा के कुछ अंशों को त्यागकर कुछ मिलाकर और कुछ परिवर्तित करके इसका कथानक तैयार किया है। उन्होंने पूरी कथा को छः अंको की परिधि में बांधकर अपनी निपुणता का परिचय दिया हैं। बहुत सी ऐसी घटनाओं और पात्रों को जिन्हें वे रंगमंच पर उपस्थित नहीं कर सकते है पात्रों के कथोपकथन के माध्यम से सूचित कर दिया है।

भीमसेन - भीम का चरित्र चित्रण करने में कवि ने अपने नाटकीय कौशल को प्रदर्शित किया है। क्रोध और भयंकरता दोनों ही भीम के चरित्र के मूल अंग हैं। नाटक के आरम्भ में क्रोधयुक्त भीम का प्रवेश भीषण मुद्रा में कराया गया हैं। सूत्रधार कहता है -पृथुललाटतटघटित विकटकीनाशतोरणत्रिशूलायमान भीषण भ्रुकुटिरापिबन्निव न सर्वान्।।[1]

भीम शारीरिक रूप से अत्यधिक शक्तिशाली तथा दृढ़ निश्चय वाले हैं। उनके चरित्र में बल, पराक्रम, पौरूष तथा स्वाभिमाान का समवेत स्वरूप विद्यमान है। दुर्योधन दौपदी के केशाम्बराकर्षण द्वारा अत्यधिक अपमान करके भीम के ज्वलन्त क्रोधाग्नि में मानो घृत की आहुति डाल चुका है-

लाक्षागृहानलविषान्नसभाप्रवेशैः, प्राणेषु वित्तनिचयेषु च नः प्रहृत्य।
आकृष्य पाण्डववधूपरिधानकेशान्, स्वस्था भवन्ति मयि जीवति धार्तराष्ट्राः।।[2]

इन बातों के स्मरण मात्र से भीम का हृदय सर्वदा उत्तेजित रहता है। अपने स्वाभिमान की रक्षा के लिए वह मर्यादा और शिष्टाचार की अवहेलना करने के लिए वह तत्पर हो जाता हैं। कौरवों द्वारा किये गये अपमानों का प्रतिशोध लेने

के लिए दुःशासन के उष्ण रूधिर पान का वीभत्स व्यापार कर बैठता है -सर्वथा पीतं दुःशासन शोणितं भीमेन।[3] यहाँ पर कवि ने अत्यन्त कुशलता के साथ भीम के शरीर में राक्षस का प्रवेश कराकर मानों उसे रूधिरपान के वीभत्स व्यापार से मुक्त करा दिया है।[4]

भीम वाणी से भी बड़े उद्धत है धृतराष्ट्र तक को कटु उक्ति कहने में नहीं चूकते हैं।[5] भीम इतना शक्तिशाली है कि वह संमतपंचक के सरोवर को अकेले इस प्रकार मथ डालता है कि उसका जल तट को लांघ कर निकल जाता है, बड़े- बड़े ग्राह बाहर फेंक दिए जाते है तथा सभी जीव जन्तु व्याकुल हो जाते है - सहसैवोल्लंघिततीरम्।[6]

दुर्योधन - दुर्योधन अत्यधिक अभिमानी, विलासप्रिय, अविचारी और उत्तेजनापूर्ण स्वभाव वाला है। वेणीसंहार नाटक में दुर्योंधन प्रतिनायक के रूप में दृष्टिगोचर होता है। नाटक में भीम के बाद दुर्योंधन का ही चरित्र महत्वपूर्ण है। दुर्योंधन महास्वाभिमानी है। वह अपने शत्रु का प्रत्यक्ष में ही अहित करना चाहता है परोक्ष में नहीं-

प्रत्यक्षं हतबान्धवा मम परे हन्तुं न योग्या रहः।
किं वा तेन कृतेन तैरिव कृतं यन्न प्रकश्यं रणे।।[7]

दुर्योंधन भीम के समान पराक्रमी, क्रोधी एवं पौरुषयुक्त है किन्तु कुछ बातों में सर्वथा भिन्न हैं। दुर्योधन विलासी स्वाभाव का अहंकारी व्यक्ति है। विलासी तो इतना है कि कंचुकी के शब्दों में प्रबल शत्रुओं के युद्धार्थ उद्यत रहने पर भी वनिता विलास का आनन्द ले रहा हैं-योऽयमुद्यतेषु बलवत्सु अथवा किं बलवत्सु वासुदेवसहायेषु पाण्डुपुत्रेष्वद्याप्यन्तः पुरविहार सुखमनुभवति।।[8]

दुर्योंधन महाक्रूर, दुष्टात्मा, षडयन्तकारी, अहंकारी और अत्यधिक कलुशित मनोवृत्ति वाला अविचारी व्यक्ति है। गुरूजनों के सदपरामर्श को न मानने के कारण उसे अत्यधिक विपत्तियाँ झेलनी पड़ती है। विश्व कल्याण के लिए सन्धि का प्रस्ताव लेकर आए हुए भगवान कृष्ण को कैद करना चाहता है-'नहि नहि संयन्तुमारब्धः' दुर्योंधन छोटी छोटी साधारण बातों पर भी शीघ्र ही उत्तेजित हो जाता है। भानुमती के स्वप्न की अधूरी बात सुनकर ही उसे मारने के लिए उद्यत हो जाता हैं-अथवा इयमेव तावत् पापशीला प्रथमनुशासनीया।[9]

दुर्योंधन मिथ्याभिमानी भी हैं क्योंकि उसके जीवित रहते हुए दुःशासन के

वक्षस्थल को फाड़कर भीम अपनी प्रतिज्ञा पूरी कर लेता हैं किन्तु दुर्योधन दुःशासन की रक्षा नही कर पाता हैं। दुःशासन की रक्षा के लिए अपने प्राणों को हथेली पर रखकर बिना रथ के भी शत्रुओं से जूझने को तैयार हो जाता हैं-

कृतं स्यन्दनगमनकालातिपातेन।[10]

दुर्योधन में भातृप्रेम से भी बढ़कर मित्रप्रेम हैं। अंगराज कर्ण उसका अभिन्न मित्र है। अपने मित्र कर्ण के प्रति उसका प्रगाढ़ प्रेम है। कर्ण की मित्रता के कारण वह अश्वत्थामा जैसे अप्रतिम योद्धा की अवहेलना कर बैठता हैं। कर्ण की मृत्यु होने पर वह अपने प्रिय अनुज दुःशासन के वध को भी भूलकर अपने मित्र के हन्ता को विनष्ट कर देना चाहता है-

शोचामि शोच्यमपि शत्रुहतं न वत्स, दुःशासनम् तमधुना न च बन्धुवर्गम्।
येनाति दुःश्रवमसाधु कृतं तु कर्णे, कर्तास्मि तस्य निधनं समरे जनस्य।।[11]

कर्ण की मृत्यु से उसकी अन्तिम आशा लता पर तुषारापात हो जाता है। जब मनुष्य निराश हो जाता है तब उसके ह्रदय में अपूर्व साहस का उदय होता है परन्तु दुर्योधन निराशा के कारण ही एक सरोवर में छिपा था। इससे उसकी निर्लज्जतापूर्ण कायरता का संकेत मिलता हैं। परन्तु यह भीरूता भी अल्पकालिक है और वह घोर संग्राम करके युद्ध में वीरतापूर्वक गिरता हैं। भीम द्वारा यह प्रस्ताव दिए जाने पर कि पाण्डवों में से किसी एक से वह युद्ध कर ले, वह भीम को ही युद्ध के लिए चुनता हैं और कहता है-

कर्णदुःशासनवधात् तुल्यावेव युवां मम्।
अप्रियोऽपि प्रियो योद्धुं त्वमेव प्रियसाहसः।।[12]

इस प्रकार दुर्योधन के चरित्र में वे सारे दुर्गुण एक साथ मिलते हैं जो किसी भी सत्पात्र के लिए निन्दनीय तथा हेय हैं, किन्तु इसके साथ साथ कहीं कहीं कुछ अच्छाईयाँ भी उसके चरित्र में परिलक्षित होती है। अपनी प्रेयसी भानुमती के प्रति उसकी अनुरक्ति एक सच्चे प्रेमी की दृष्टि से प्रशंसनीय है। अपने मित्र अंगराज कर्ण के प्रति प्रगाढ़ प्रेम भी स्तुत्य हैं।

इस प्रकार दुर्योधन का चरित्र एक अभिमानी, विलासी, विवेकहीन, षढयन्त्रकारी एवं दुष्ट व्यक्ति के रूप में चित्रित किया गया हैं। कवि ने द्वितीय, तृतीय, चतृर्थ और पंचम अंक में रंगमंच पर दुर्योधन को उपस्थित किया है तथा प्रथम और षष्ठ अंक में बार बार उल्लेख मिलता हैं।

युधिष्ठिर - युधिष्ठिर इस नाटक के नायक है। इस नाटक के षष्ठ अंक में युधिष्ठिर रंगमंच पर उपस्थित होते हैं। युधिष्ठिर स्वभाव से परमशान्त, युद्ध की अपेक्षा सन्धि के पक्षपाती तथा स्नेह सम्पन्न हृदय वाले व्यक्ति के रूप मे हमारे समक्ष उपस्थित हुए है। वे वंश विघातक संग्राम को नहीं होने देना चाहते, क्योंकि वे उसके दुष्परिणामों से भली भांति परिचित है। पाँच ग्रामों की याचना से सन्तुष्ट रहना युधिष्ठिर जैसे उदात्त चरित्र महानुभाव का ही कार्य हो सकता हैं। युधिष्ठिर के हृदय में अपने भाइयों के प्रति प्रगााढ़ प्रेम हैं। षष्ठ अंक में चार्वाक द्वारा भीम वध की सूचना प्राप्त होते ही वे दुर्योधन से प्रतिशोध के स्थान पर द्रौपदी सहित स्वयं चितारोहण की तैयारी में शीघ्रता से लग जाते हैं-कृष्णे, न कश्चिदस्मद्वचनं करोति। भवतु स्वमेवाहं दारुसंचयं कृत्वा चितामादीपयामि।

इस प्रकार युधिष्ठिर एक सामान्य व्यक्तित्व वाले हैं उनका चरित्र क्षत्रियोचित नहीं कहा जा सकता क्योंकि वे अत्यंत शांत सरल स्वभाव के राजा है सामान्य जनोचित आचरण के कारण उनका चरित्र नाटक में विशिष्ट स्थान नहीं बना पाया है-

तीर्णे भीष्ममहोदधौ कथमपि द्रोणानले निर्वृते
कर्णाशीविष्भोगिनी प्रशमिते शल्ये च याते दिवम्।
भीमेन प्रियसाहसेन रभसात् स्वल्पावशेषे जये
सर्वे जीवितसंशयं वयममी वाचा समा रोपिता।।[13]

नाटक में युधिष्ठिर की उपस्थिति केवल रंगमच पर ही हुई है जबकि प्रथम और तृतीय अंक में युधिष्ठिर का उल्लेख प्राप्त होता है।

अश्वत्थामा - द्रोणाचार्य का पुत्र अश्वत्थामा अत्यधिक पराक्रमी धनुर्वेद विशारद तथा देवता के समान है धृतराष्ट्र कहते है कि- पितुरपि समधिकबलः शिक्षावान-मरोपमश्चायमश्वत्थामा प्राप्तः।।[14]

अर्थात पिता से भी अधिक शक्तिशाली शिक्षित और देवतुल्य वह अश्वत्थामा आया है इसीलिये अगवानी करके उस वीर का सम्मान करो।

अश्वत्थामा पराक्रमी, तेजस्वी, पितृभक्त और सहिष्णु है। पिता द्रोणाचार्य के प्रति उसकी अत्यधिक श्रद्धा और प्रेम है। पिता की मृत्यु का समाचार सुनकर वह स्वंय भी अपने प्राण त्यागने को तत्पर हो जाता है-

मयि जीवति मत्तान्तः केशग्रहमवाप्तवान्।
कथमन्ये करिष्यन्ति पुत्रेभ्यःपुत्रिणः स्पृहाम्।।[15]

यहाँ पर अश्वत्थामा का पित अनुराग उच्च कोटि का है। अश्वत्थामा के रग रग मे वीरता व्याप्त है। उसकी उक्तियों से भी वीरता प्रकट होती है-

यो यः शस्त्रं बिभर्ति स्वभुजगुरुमदः पाण्डवीनां चमूनां
यो यः पाञ्चालगोत्रे शिशुरधिकाया गर्भशय्यां गतो वा।
यो यस्तत्कर्मसाक्षी चरति मयि रणे यश्च यश्च प्रतीपः
क्रोधान्धस्तस्य तस्य स्वयमपि जगतामन्तकस्यान्तकोऽहम्।।[16]

अश्वत्थामा एक स्वामिभक्त तथा निष्ठावान योद्धा हैं। कर्ण द्वारा अपने पिता की निन्दा किए जाने पर तथा कर्ण के प्रति दुर्योधन के पक्षपातपूर्ण व्यवहार के कारण वह शस्त्र त्याग देता है किन्तु भीम द्वारा दुःशासन की दुर्दशा का ज्ञान होते ही अपनी प्रतिज्ञा तोड़कर पुनः शस्त्र ग्रहण करना चाहता है। जब वह कौरवों की सेना को युद्ध क्षेत्र से विमुख हुई देखता है तब खेद व्यक्त करते हुए कहता है-

यदि समरमपास्य नास्ति मृत्यो-
र्भयमिति युक्तमितोऽन्यतः प्रयातुम्।
अथ मरणमवश्यमेव जन्तोः
किमिति मुधा मलिनं यशः कुरुध्वे।।[17]

जब अश्वत्थामा अपने अपमान के कारण राजबन्धु की सहायता करने में असमर्थ होता है तब शोक प्रकट करता है-

दुःशासनस्य रुधिरे पीयमानेऽप्युदासितम्।
दुर्योधस्य कर्तास्मि किमन्यत्प्रियमाहवे।।[18]

यहॉ अश्वत्थामा के चरित्र की विशिष्टता बढ़ गई है। वास्तव में भट्ट नारायण ने अश्वत्थामा का चरित्र चित्रण करने में अपने नाट्य कौशल का पूर्ण परिचय किया है।

कर्ण-कर्ण योद्धा एवं राजनीतिज्ञ दोनों है। यह अंगदेश का राजा है तथा दुर्योधन का अभिन्न मित्र है। नाटक में राधेय, सूतपुत्र, अंगराज, राधापुत्र आदि विभिन्न नामों का उल्लेख किया गया है । कर्ण वीर एवं उत्साही है किन्तु अभिमानी एवं दुष्टता के दुर्गणों से भी युक्त है। कर्ण केवल तीसरे अंक में रंगमंच पर आता

है। चौथे अंक में उसके वीरतापूर्ण युद्ध का वर्णन है और उसका संदेश दुर्योधन को दिया गया है।

द्रोणाचार्य जैसे महापराक्रमी व्यक्ति की निन्दा करने में उसे अनौचित्य का ज्ञान नही होता है। द्रोणाचार्य की मृत्यु के पश्चात वह 'एवं किल तस्याभिप्रायः (तृतीय अंक) इत्यादि कथनों से दुर्योंधन के मस्तिष्क को इतना विषाक्त कर देता है कि दुर्योंधन अश्वत्थामा जैसे महावीर की सहायता से वंचित रह जाता है। कर्ण कहता है-

धृतायुधो यावदहं तावदन्यैः किमायुधैः।
यद् वा न सिद्धमस्त्रेण मम तत् केन सेत्स्यति।।[19]

कर्ण उद्भट् वीर तथा सच्चा मित्र है। वह अपने मित्र दुर्योंधन के लिए अपने अद्वितीय पराक्रमी पुत्र का बलिदान देखता है तथा स्वंय भी शत्रु से युद्ध करते हुए वीरगति को प्राप्त करता है। पांचवे अंक में कर्ण के मृत्यु की सूचना दी गई है। उसका संदेश अत्यन्त कारुणिक है। जो कि अपने मित्र के प्रति उसके उसके हृदय में कोमल भावना को दर्शाता है। नाटक में कर्ण भाग्यवादी होने के साथ साथ चापलूस मित्र कटुभाषी योद्धा के रूप में भी चित्रित किया गया है।

धृतराष्ट्र - वेणीसंहार नाटक के पांचवे अंक में धृतराष्ट्र को रंगमंच पर दर्शाया गया है। वह अत्यधिक पुत्रवत्सल पिता हैं। उसकी यह इच्छा रहती है कि दुर्योधन युद्ध न करे और अपने जीवन को सुरक्षित रखे। वह उस पिता का सच्चा चित्र उपस्थित करता है जो 99 पुत्रों की मृत्यु से दुःखी है। इसीलिए वह प्रत्येक दशा में शान्ति चाहता है युद्ध नहीं-

दायादा न ययोर्बलेन गणितास्तौ द्रोणाभीष्मौ हतौ
कर्णस्यात्मजमग्रतः शमयतो भीतं जगत् फाल्गुनात्।
वत्सानां निधनेन मे त्वयि रिपुः शेषप्रतिज्ञोऽधुना
मानं वैरिषु मुंच तात पितरावन्धाविमौ पालय।।[20]

यद्यपि शान्ति या विराम के लिए शत्रु से प्रार्थना करना क्षत्रिय की प्रतिष्ठा के विरुद्ध होता है फिर भी वृद्ध एवं अन्धा होने के कारण उसका कठोर क्षत्रिय स्वभाव दूर हो गया है। एक वृद्ध मानव की भांति वह अत्यधिक धैर्य और सावधानी रखता है। वह परिस्थितिवश कार्य करने में निपुण है जब अश्वत्थामा दुर्योधन के

कटुवचन से अपमानित होकर चला जाता है तब उसको अनुकूल करने के लिए धृतराष्ट्र कहता है-

वत्स दुर्योधन! द्रोणवधपरिभवोद्दीपितक्रोधपावकः पितुरपि समधिकबलः शिक्षावानमरोपमश्चायमश्वत्थामा प्राप्तःतत् प्रत्युगमनेन तावदयं संभाव्यतां वीरः।।[21]

आगे वह कहता है कि इस समय ऐसे पराक्रमी को वचन मात्र से भी अप्रसन्न करना उचित नही है-

न खल्वास्मिन् काले पराक्रमवतामेवंविधानां वाङ्मात्रेणापि विरागमुत्पादयितुमर्हसि।[22]

इस प्रकार धृतराष्ट्र यथासम्भव अपने पुत्र दुर्योधन को युद्ध में मारे जाने से बचाने का प्रयास करता है और वह संजय के माध्यम से अश्वत्थामा को बाल्यावस्था का स्मरण कराता है और कहता हैं कि दुर्योधन पर क्रोध न करके युद्ध में इसका साथ दो और इसकी रक्षा करो-

स्मरति न भवान् पीतंस्तन्यं विभज्य सहामुना
मम च मृदितं क्षौमं बाल्ये त्वदङ्गविवर्तनैः।
अनुजनिधनस्फीताच्छोकादतिप्रणयाच्च यद्
विकृतवचने मास्मिन् क्रोधश्चिरं क्रियतां त्वया।।[23]

चार्वाक - दुर्योधन का मित्र चार्वाक एक राक्षस है। वह नाटक के अन्तिम अंक में मुनिरूप में प्रवेश करता है। वह युधिष्ठिर एवं द्रौपदी को भ्रम में डालकर जलाने का प्रयास करता है और इस कार्य में वह तब तक के लिए सफल भी हो जाता है जब तक कि विकृत वेष में भीम वहाँ नही पहुँच जाता। राक्षस के अनुसार दोनों को जलाने के सफल मनोरथ वाला जानकर कहता है-

मुनिजनविरुद्धमिदम्। पूर्णो मे मनोरथः। यावदनुपलक्षितः समिन्धयामि वह्निम्। राजन् शक्नुमो वयमिहैव स्थातुम्।[24] ऐसा कहकर वह चला जाता है। चार्वाक के विषय में विशिष्ट बात यह है कि वह युधिष्ठिर का आतिथ्य स्वीकार नही करता है। संभवतः युधिष्ठिर को क्षति पहुंचाने के उद्देश्य से ऐसा करता है। अतएव युधिष्ठिर का रंचमात्र भी उपकार स्वीकार करने को तैयार नहीं है।

श्रीकृष्ण - नाटक के केवल षष्ठ अंक में श्रीकृष्ण को दर्शाया गया है। भट्टनारायण ने श्रीकृष्ण को विष्णु के अवतार के रूप में चित्रित किया है-

आत्मारामा विहितरतयो निर्विकल्पे समाधौ
ज्ञानोत्सेकाद्विघटिततमोग्रन्थयः सत्त्वनिष्ठाः।
यं वीक्षन्ते कमपि तमसां ज्योतिषां वा परस्तात्
तं मोहान्धः कथमयममुं वेत्तु देवं पुराणम्।।[25]

अर्थात् आत्मा में रमण करने वाले निर्विकल्पक समाधि में अनुराग रखने वाले ज्ञान के आधिक्य से तमोगुण की ग्रन्थियों को नष्ट करने वाले और ब्रह्म में निष्ठा रखने वाले योगी लोग जिस किसी को प्रकाश अथवा अन्धकार से परे देखते हैं, उस अनादि सिद्धदेव; श्रीकृष्ण को मोह से अन्धा दुर्योधन कैसे समझ सकता है।

इसी प्रकार षष्ठ अंक में युधिष्ठिर कहते हैं कि आप भगवान पुरुषोत्तम आदरयुक्त होकर मुझ पुण्यशाली से वार्तालाप कर रहे हैं इसके आगे और क्या मैं प्रसन्न भगवान से याचना करूँ।[26] यद्यपि नाटक में श्रीकृष्ण कम दिखाई देते हैं फिर भी उनका यह कथन कि 'तत्कथय महाराज किमस्मात् परं समीहितं सम्पादयामि' (अंक 6) इस बात को द्योतित करता है कि वे ही नाटकीय घटनाओं के संचालक हैं।

अर्जुन - कुन्ती और पाण्डु पुत्र अर्जुन एक अतुलनीय धनुर्धर है। जिसने युद्ध में बड़े-बड़े योद्धाओं का वध कर दिया है। पंचम अंक में दुर्योधन भीम पर क्रोध करता है तब धृतराष्ट्र द्वारा पकड़कर बैठाए जाने पर भीम भी क्रोध करता है तब अर्जुन कहते हैं-

अप्रियाणि करोत्येष वाचा शक्तो न कर्मणा।
हतभ्रातृशतो दुःखी प्रलापैरस्य का व्यथा।।[27]

अर्थात् आर्य! प्रसन्न होइए। इस पर क्रोध करने क्या लाभ? मारे गए सौ भाइयों वाला अतएव दुःखी और कर्म से असमर्थ यह वाणी से अपकार कर रहा है। इसके व्यर्थ प्रलाप से क्या कष्ट है।

सहदेव - नाटक के प्रथम अंक में सहदेव की उपस्थिति दिखाई गई है। सहदेव कौरवों पर क्रोधित होते हुए भीम से कहते हैं-

धृतराष्ट्रस्य तनयान् कृतवैरान् पदे-पदे।
राजा न चेन्निषेद्धा स्यात् कः क्षमेत तवानुजः।।[28]

अर्थात् यदि राजा युधिष्ठिर रोकने वाले न होते तो आपका कौन छोटा भाई पग-पग पर शत्रुता करने वाले धृतराष्ट्र के पुत्रों को सहन करे। वह कहता है

कि आर्य! इस प्रकार आपके अत्यन्त क्रुद्ध होने पर कदाचित् बडे भाई दुःखी न हो। इस प्रकार नाटककार ने सहदेव को मर्यादा पालक और बड़े भाई की आज्ञा का उल्लंघन न करने वाले व्यक्ति के रूप में प्रथम अंक में रंगमंच पर उपस्थित किया है।

नकुल - नकुल माद्री और पाण्डु पुत्र है। नाटक के षष्ठ अंक में चार्वाक वध के समय नकुल का उल्लेख किया गया है-

'निगृहीतः स दुरात्मा नकुलेन' (षष्ठ अंक) अर्थात उस दुरात्मा राक्षस को नकुल ने पकड़ लिया है। यहाँ पर नकुल को रंगमंच पर उपस्थित नहीं किया गया है।

रुधिरप्रिय - रुधिरप्रिय पाण्डवों का पक्षपाती एक राक्षस है। नाटक के तृतीय अंक में रुधिरप्रिय की उपस्थिति रंगमंच पर दर्शायी गयी है। राक्षस और राक्षसी संवाद में राक्षस कहता है-

अयि सुस्थिते, ननु पुत्र शोकसन्तप्त हृदयां स्वामिनी हिडिम्बा देवी प्रेक्षितं गतोऽस्मि। (तृतीय अंक) अर्थात् मैं पुत्र शोक से विह्वल हृदय वाली स्वामिनी हिडिम्बा देवी को देखने गया था। इस कथन से स्पष्ट होता है कि राक्षस होते हुए भी पाण्डवों का पक्षपाती है। वह हिडिम्बा, अभिमन्यु के शोक से संतप्त सुभद्रा देवी और द्रौपदी के दुःखों का भी वर्णन करता है।

अश्वत्थामा के द्वारा द्रोणाचार्य के विषय में पूछने पर सूत कहता हैं-

एतेऽपि तस्य कुपितस्य महास्त्रपाणेः
किं धूर्जटेरिव तुलामुपयान्ति संख्यें।
शोकोपरुद्धहृदयेन यदा तु शस्त्रं
त्यक्तं तदास्य विहितं रिपुणातिघोरम्।।[29]

द्रोणाचार्य की मृत्यु कुमार के ही कारण हुई है। सत्यवक्ता युधिष्ठिर ने 'अश्वत्थामा मारा गया' यह स्पष्ट कहकर अन्त में 'हाथी' यह निश्चय ही धीरे से कहा। यह सुनकर उन्होने संग्राम में शस्त्रों और आंसुओं को एक साथ छोड़ दिया।

चतुर्थ अंक में दुर्योधन के सारथि(सूत) को रंगमंच पर प्रस्तुत किया गया हैं। सारथि से दुर्योधन, दुःशासन के समीप रथ ले जाने को कहता है तब सूत कहता है-

आयुष्मन्! अक्षमाः सम्प्रति वाहास्ते रथमुद्वोढुम्! मनोरथं च। (चतुर्थ

अंक) अर्थात् घोड़े इस समय आपका रथ ले जाने में असमर्थ हैं और मनोरथपूर्ण करने में भी। वह युद्ध स्थल से दुर्योधन को दूर ले जाकर उसके प्राणों की रक्षा करता है। सूत स्वामीभक्त और कर्तव्यपालक के रूप में दिखाई देता है।

कृप - नाटक के तृतीय अंक में कृप को रंगमंच पर उपस्थित किया गया हैं। कृप अश्वत्थामा का मामा है। द्रोणाचार्य की मृत्यु पर अश्वत्थामा विलाप करता है तब वह उसको सान्त्वना देता है-

निवापाञ्जलिदानेन केतनैः श्राद्धकर्मभिः।
तस्योपकारे शक्तस्त्वं किं जीवनम् किमुतान्यथा।।[30]

कृप कहता है कि बेटा जब तक यह संसार है तब तक लोक व्यवहार प्रसिद्ध ही हैं देखो तिलांजलि दान, ब्राह्मण-भोजन और श्राद्धकर्म के द्वारा उनके उपकार में तुम जीवित रहने पर समर्थ हो सकते हो या अन्यथा (मृत्यु होने पर)।

नाटक में कुछ अन्य पुरुष पात्र भी हैं जो कहीं-कहीं ही उपस्थित हुए हैं उनका भी उल्लेख किया जाना आवश्यक है वे पात्र निम्नलिखित हैं-

सूत्रधार - सूत्रधार नाटक का प्रारम्भ करता है। वह नान्दीपाठ के पश्चात् कथा को आगे बढ़ाता है। सूत्रधार प्रथम अंक के प्रारम्भ में ही रंगमंच पर उपस्थित होता है।

पारिपार्श्विक - नाटक के प्रथम अंक में रंगमंच पर परिपार्श्विक की उपस्थिति रहती है। वह सूत्रधार का सहायक है।

सुन्दरक- सुन्दरक अंगराज कर्ण का सेवक है। नाटक के चतुर्थ अंक में रंगमंच पर दर्शाया गया है। वह दुर्योंधन को कर्ण और वृषसेन के युद्ध की स्थिति से अवगत कराता है (चतुर्थ अंक)।

संजय- संजय धृतराष्ट्र का सारथि है। इस नाटक के पाँचवे अंक में रंगमंच पर दर्शाया गया है वह धृतराष्ट्र और गान्धारी को दुर्योधन की स्थिति से अवगत कराता है।

पाञ्चालक - पाञ्चालक युधिष्ठिर को प्रिय समाचार बताने वाला है। षष्ठ अंक में इसकी उपस्थिति रंगमंच पर देखने को मिलती है।

वृषसेन- यह कर्ण का पुत्र हैं जिसे रंगमंच पर नही दर्शाया गया है किन्तु इसका उल्लेख चतुर्थ अंक में मिलता है।

जयन्धर - जयन्धर युधिष्ठिर का कञ्चुकी हैं।

विनयन्धर - दुर्योधन का कञ्चुकी है।

इस प्रकार वेणीसंहार नाटक के सभी पुरुष पात्रों के चारित्रिक पर्यालोचन से स्पष्ट होता है कि महाकवि भट्टनारायण ने भारतीय संस्कृति के आदर्शों तथा नाटकीय तत्वों के अनुकरण द्वारा व्यापक सामाजिक जीवन की दृष्टि से पात्रों के विभिन्न स्वरूपों एवं सम्बन्धों को तदनुरूप चित्रित किया है। नाटककार ने अपने नाटक का नामकरण यथा नाम तथा गुण के अनुरूप रखने का पूर्ण प्रयास किया है जो प्रभावशाली तथा मुख्य उद्देश्य को व्यक्त करने में सफल रहा है।

संदर्भ -

1. *वेणीसंहार नाटक- तारणीश झा- प्रथम अंक पृ. 22*
2. *वेणीसंहार-1/8*
3. *वेणीसंहार-तृतीय अंक पृ. 197*
4. *वेणीसंहार-तृतीय अंक पृ. 128*
5. *वेणीसंहार-5/29*
6. *वेणीसंहार-षष्ठ अंक*
7. *वेणीसंहार-5/9*
8. *वेणीसंहार-द्वितीय अंक पृ. 63*
9. *वेणीसंहार-द्वितीय अंक पृ. 84*
10. *वेणीसंहार-चतुर्थ अंक पृ. 210*
11. *वेणीसंहार-5/16*
12. *वेणीसंहार-6/11*
13. *वेणीसंहार-6/1*
14. *वेणीसंहार-पंचम अंक पृ.307*
15. *वेणीसंहार-3/31*
16. *वेणीसंहार-3/32*
17. *वेणीसंहार-3/6*
18. *वेणीसंहार-3/49*
19. *वेणीसंहार-3/46*
20. *वेणीसंहार- 5/0*
21. *वेणीसंहार-पंचम अंक पृ.307*
22. *वेणीसंहार-पंचम अंक पृ.307*
23. *वेणीसंहार-5/41*
24. *वेणीसंहार-षष्ठ अंक*
25. *वेणीसंहार-1/23*
26. *वेणीसंहार-6/45*
27. *वेणीसंहार-5/31*
28. *वेणीसंहार-1/9*
29. *वेणीसंहार-3/10*
30. *वेणीसंहार-3/18*

15

वेणीसंहार में व्यक्तित्व के विविध पक्ष

रामहेत गौतम

11वीं शदी के आचार्य मम्मट के द्वारा काव्यप्रकाश में, 10वीं शती के ध्वन्यालोककार के द्वारा ध्वन्यालोक में, 8वीं शती के आचार्य वामन ने काव्यलंकार सूत्रवृत्ति में जगह-जगह वेणी-संहार के श्लोकों को उद्धृत किया है। अतः स्पष्ट है कि इनसे पूर्ववर्ती हैं। कवि भट्टनारायण 'वेणीसंहार' शीर्षक से नाटक लिखकर भारतीय समाज में स्त्री के मान से पुरुष के मान का जुड़ा होना सूचित किया है। कवि के अनुसार स्त्री का बल उसका पति ही होता है। उसकी प्रतिज्ञा पति की प्रतिज्ञा होती है। जिसकी पूर्ति के लिए सम्पूर्ण नाटकीय घटनाक्रम है। इस सम्पूर्ण घटनाक्रम के केन्द्र में भीम ही दिखता है। प्रतिज्ञा की सिद्धि भीम को होती है। वह कहता है कि ''संयमयामि तावदनेन सुयोधन-शोणितोक्षितेन पाणिना पाञ्चाल्या दुःशासनावकृष्टं केशहस्तम्।''[1]

प्रतिनायक सुयोधन की मृत्यु से अर्थ पुरुषार्थ की सिद्धि तो युधिष्ठिर को ही होती है। जुआ आदि दुर्व्यवहार के कारण पैदा हुए द्रौपदी के दुःखसागर को पार करने के लिए किये गये शत्रुकुल नाश के पश्चात् अपने सभी भाईयों के साथ सकुशल राजलक्ष्मी का भोग करते हुए संतुष्ट युधिष्ठिर कहते हैं कि- क्रोधान्धैः सकलं हतं रिपुकुलं पञ्चाक्षतास्ते वयं, पाञ्चाल्या मम दुर्नयोपजनितस्तीर्णो निकारार्णवः। त्वं देवः पुरुषोत्तमः सुकृतिनं मामादृतो भाषसे, किं नामान्यदतः परं भगवतो याचे प्रसन्नापहम्।।[2]

इससे सिद्ध होता है कि प्राधनतः फल की सिद्धि तो युधिष्ठिर को ही होती है। इसका साधन भीम के द्वारा सुयोधन की मृत्यु ही है, जिसे महोत्सव कहा जाता है- ''युधिष्ठिर- सत्वरं गच्छतु भवान्। अनुभवतु तपस्विनी वेणीसंहार-महोत्सवम् ।''[3]

नाटक के आरम्भ में ही भीम कहता है कि सुयोधन से संग्राम एक यज्ञ है। युधिष्ठिर जिसके दीक्षित यजमान हैं, कृष्ण अध्यक्षता कर रहे हैं तथा भीम आदि चारों भाई ऋत्विक हैं। 'कौरव्याः पशवः प्रियापरिभवक्लेशोपशान्तिः फलं'[4] इससे भी स्पष्ट है कि युद्ध फल का स्वामी युधिष्ठिर ही हैं। अतः कहा जा सकता है कि इस नाटक का नायक भीम नहीं युधिष्ठिर ही हैं। भीम के निकट प्रतीत होती द्रौपदी युधिष्ठिर की पत्नी होने से रानी की अधिकारी है। वह स्वीया मुग्धा नायिका है। नाटक के आरम्भ में सूत्रधार – गाता है कि (इस शरदकाल में) ''सुन्दर पंखों वाले, मधुर वाणी वाले, दिशाओं को शोभित करने वाले, अति मतवाले, कार्य करने वाले, काली चोंच तथा काले चरणों वाले विशेष प्रकार के हंस भूतल पर उतर रहे हैं।''[6] अथवा भीष्म-द्रोणादि उत्तम सहयोगियों वाले/पक्षधरों वाले मधुरभाषी, अपनी आशाओं/इच्छाओं को साधने वाले, उद्दण्डता से कार्य करने वाले, धृतराष्ट्र के पुत्र काल/मृत्यु के वशीभूत होकर जमीन पर गिर रहे हैं।

पारिपार्श्विक द्वारा भिन्नार्थ में समझकर 'शान्तं पापं' कहकर अमङ्गल की आशंका से हृदय कम्पन की बात करने पर सूत्रधार पुनः गाता है कि शत्रु प्रशमन से प्राप्त वैर रूपी अग्नि के शमित हो जाने पर मय माधव के पाण्डुकुमार आनन्दित हों। तथा जिनके रक्त से धरती का प्रसाधन हुआ वे क्षतविग्रह वाले कौरव स्वस्थ हों।[7]

इतना उच्चरित होते ही नेपथ्य से तिरस्कार सहित आवाज आती है कि लाक्षागृह के अग्निकाण्ड, विषाक्त भोजन, भरी सभा में द्रोपदी का अपमान आदि भयंकर कार्य करके जुआ आदि के छल से सम्पत्ति हड़प लेने के बाद भी मेरे होते हुए भी धृतराष्ट्र पुत्र कैसे आराम से रह सकते हैं।[8]

यहाँ गौर करने की बात यह है कि कवि ने पूर्व पद में सूत्रधार के माध्यम से दुर्योधन आदि की वीरता का सम्मान किया है। उन्हें अपमानित नहीं किया है। इस बात से कवि ने स्पष्ट संदेश दिया है कि सभी सामाजिक सभी के स्वाभिमान का ध्यान रखें। कोई किसी को आहत न करे; क्योंकि अपमान बदले की भावना को प्रदीप्त करता है। जो केवल विनाशक ही होता है। सूत्रधार के कथन को सुन नेपथ्य से भी तत्काल तिरस्कार पूर्ण आवाज आती है। इस प्रकार सम्पूर्ण नाटक में देखने को मिलता है कि तिरस्कार ही सर्वनाश का कारण है। इसी नाटक के तृतीय अङ्क में कृपाचार कहते हैं कि एक बाल पकड़कर खीचने का दारुण परिणाम है कि

महाभारत हो रहा है। दूसरे द्रोणाचार्य के बाल खींचने पर तो प्रजा का विनाश ही हो जायेगा।[9]

इस सम्पूर्ण नाटक का घटनाक्रम का केन्द्रीय बिन्दु व्यक्तित्व ही है। व्यक्तित्व के ह्रास-विकास से ही समाज व परिवारों के मध्य संघर्ष होता है। युधिष्ठिर से लेकर दुर्योधन पर्यन्त व्यक्ति की विविध स्थितियाँ आज भी हमें कुछ आत्मसात् करने तथा कुछ त्यागने की प्रेरणा देती हैं। इन स्थितियों को समझने के लिए नाटक के प्रमुख पात्रों के व्यक्तित्व पर प्रकाश डालने का उपक्रम इस प्रकार है-

युधिष्ठिर-

पाँचों पाण्डवों में बड़े युधिष्ठिर राजा हैं। वेणीसंहार- 6.28 के अनुसार वे स्वनामधन्य हैं। स्वभाव से नम्र, सत्यभाषी तथा धर्मात्मा हैं, वे राज्य प्राप्ति के लिए युद्ध को टालना चाहते हैं। वे सन्धि करने को तैयार हैं। उनके इस विचार का विरोध होता है। पर वे अपनी स्वाभाविकता को बनाये रखते हैं। वनवास और अज्ञातवास बिताकर भी वे पाँच गाँव लेकर दुर्भाग्य से सन्धि कर लेना चाहते हैं। वे छल-प्रपञ्च से दूर रहते हैं। उनकी इसी छवि का कूटनीतिक प्रयोग पूरे युद्ध का रुख ही पलट देता है। द्रोण की हत्या छल से की जाती है। इसका दुष्परिणाम है कि अश्वत्थामा पाण्डवों के खून का प्यासा हो जाता है। जल्दी विश्वास कर लेना उनकी कमजोरी नजर आती है। चार्वाक् राक्षस की बातों में आकर वे प्राणोत्सर्ग करने को तत्पर हो जाते हैं। साथ में द्रौपदी को भी प्राणोत्सर्ग में साथ ले लेते हैं।[10] वे अपने भाईयों से बहुत प्रेम करते हैं। वे स्वयं तो मर जाना चाहते हैं पर अनुजों को कहते हैं कि कैसे भी करके तुम्हें जीवित रहना है ताकि पितरों का तर्पण कर सको। इस प्रकार हम देखते हैं कि युधिष्ठिर युद्ध के लिए नहीं बने हैं ऐसा लगता है। फिर भी, समय-समय पर वे अपने नीति वचनों से अपने पाण्डित्य को व्यक्त करते रहते हैं जैसे कि- युधिष्ठिर कहते हैं कि अक्षौहिणी सेना में बान्धव रहित शरीर मात्र वैभव वाला दुर्योधन कदाचित् अपना अभिमान छोड़ दे या तपोवन को चला जाये अथवा अपने पिता के मुँह से सन्धि की याचना करें।

वे बड़े भोले-भाले दिखाते हैं। चार्वाक राक्षस आडम्बर करके युधिष्ठिर को धोखा देने में सफल हो जाता है यहाँ आडम्बरियों के प्रति जागरूकता अपेक्षित थी।[11]

यद्यपि युधिष्ठिर धर्मराज के रूप में स्वीकृत हैं, फिर भी द्यूतकर्म उनके व्यक्तित्व को कलंकित कर देता है, जिसे वे स्वयं स्वीकर करते हैं। वत्स भीम! द्यूतव्यसनी मुझ निर्लज्ज की भक्ति से व्याकुल सहस्र हस्थीबल वाले तुमको दासता स्वीकार करनी पड़ी।[12]

युधिष्ठिर लोकाचारी हैं वे लोकाचार को अनुल्लंघनीय मानते हैं। 'अनतिक्रमणीयं लोकवृत्तम्। भद्रे! उदकमुपानय।'[13]

इतना ही नहीं वे जयन्धर के माध्यम से अपने अनुज नकुल को संदेश भेजते हैं कि- शास्त्राध्ययन से निर्मल बुद्धि से अनुज सहित हमें भूल जाना और अश्रुपूरित पिण्ड पिता पाण्डु को अर्पित करने के लिए दायादों(कुटुम्बियों), यादवों अथवा जंगल में जहाँ भी हो सके तुम्हें अपने शरीर की रक्षा करनी चाहिए।[14]

युधिष्ठिर जल्दी भावुक हो जाते हैं। भावुक होकर वे आत्मदाह का निर्णय ले लेते हैं। जबकि शोकान्धता के कारण क्षात्रधर्म का त्याग अनुचित है। अतः कञ्चुकी कहता है कि- महाराज! शोकान्धता के कारण देव सदृश आपके द्वारा मूर्खों की भाँति क्षात्रधर्म त्यागा जा रहा है।

युधिष्ठिर अपने भाईयों से बहुत प्रेम करते हैं। वे भीम के प्रति अपने प्रेम को व्यक्त करते हुए कहते हैं कि- **मया पीतं पीतं तदनु भवतोम्बास्तनयुगं, मदुच्छिष्टैर्वृत्ति जनयसि रसर्वत्सलतया। वितानेष्वप्येवं तव मम च सोमे विधिरभू-न्निवापाऽम्भः पूर्व पिबसि कथमेवं त्वमधुना।।**[15]

इस प्रकार नाटक में युधिष्ठिर भ्रातृप्रेमी, नीतिज्ञ, किञ्चित व्यसनी होते हुए भी प्रधानतः इस नाटक के नायक हैं। नाटक में फल की सिद्धि युधिष्ठिर को ही होती है। जो भीम के कथन से स्पष्ट है। 'लक्ष्मीरार्ये निषण्णा चतुरुदधिपयः सीमया सार्धमुर्व्या।'[16] युधिष्ठिर के इस लक्ष्य को साधती प्रतिज्ञा को एक बड़ा कार्य बताते हुए भीम कहता है कि- आर्य! सुमहदवशिष्टम्। संयमयामि तावदनेन सुयोधन-शोणितोक्षितेन पाणिना पाञ्चाल्या दुःशासनावकृष्टं केशहस्तम्।

कृष्टा येनासि राज्ञां सदसि नृपशुना तेन दुःशासनेन,
स्त्यानान्येतानि तस्य स्पृशं मम करयोः पीतशेषाण्यसृज्जि।
कान्ते! राज्ञः कुरुणामतिसरसमिदं मद्गदा-चूर्णितोरो-
रङ्गेऽङ्गेऽसृङ्निषक्तं तव परिभवजसयाचलस्योपशान्त्यै।।[17]

नाटक के अन्त में राज्याभिषेक भी युधिष्ठिर का ही होता है।[18]

भीम -

युधिष्ठिर जहाँ क्षमा करके समझौते के लिए तैयार हैं वहीं उनको राज्यलक्ष्मी की सिद्धि में प्रमुख भूमिका निभाने वाला इस नाटक का दूसरा कोई पात्र अगर है तो वह भीम ही है। वह युधिष्ठिर के विपरीत शीघ्र कुपित होने वाला है। वह क्षमा करने को तैयार नहीं है।'क्रुधा सन्धिं भीमो विघटयति यूयं घटयत' के भाव के साथ वह हमेशा प्रतिकार के लिए तमतमाया रहता है। यहाँ भी हम पाते हैं कि भीम बदले की भावना से तमतमाया हुआ है। सहदेव भी उलाहना पूर्वक कहता है यदि महाराज युधिष्ठिर माफ न कर दें। तो आपका कौन कनिष्ठ उसे क्षमा कर सकेगा। तभी भीम कहते हैं कि - **'किं नाम कदाचित्खिद्यते गुरुः खेदमपि जानाति।'**[19]

भीम जिद्दी प्रकृति के हैं। वे कहते हैं कि- 'नाद्यैकं दिवसं ममासि न गुरुर्नहि विधेयस्तव'[20]

अकड़ में घूमता हुआ भीम द्रौपदी के गृह को शास्त्रागर समझ बैठता है। यह इस बात का सूचक है कि क्रोध में व्यक्ति विवेक शून्य हो जाता है।

भीम विद्रोही है। जहाँ एक ओर युधिष्ठिर युद्ध को टालने के लिए सन्धि का द्वार खुला रखते हैं, किन्तु भीम विद्रोह करते है।[21] दृढ़संकल्पी भीम कहता है कि क्या मैं युद्ध में कौरव शतदल का विनाश नहीं कर सकता। क्या दुःशासन के वक्षःस्थल को चीर कर लहू नहीं पी सकता। क्या सुयोधन की जङ्घाओं को अपनी गदा से चूर-चूर नहीं कर सकता। जो महाराज युधिष्ठिर सन्धि करने की सोच रहे हैं।[22]

नाटक के छठें अङ्क में भीम द्वारा दुर्योधन के रक्त पीने का वर्णन आता है। आज भी लोग खून का प्यासा आदि कहावतों का प्रयोग करते हुए देखे जा सकते हैं। आज ऐसा व्यवहार सभ्य समाज के विपरीत है। मानवीय खून को पीना जघन्य कृत्य है। तिरस्कार के गर्त में फसे लोगों को कुछ भी गलत नजर नहीं आता। तिरस्कार से आहत होकर बदले की भावना में आगबबूला भीम सहदेव को फटकारते हुए कहते हैं कि शत्रुकुल का विनाश तुम्हें लज्जित कर कर रहा है, लेकिन द्रौपदी के बाल पकड़कर खींचना लज्जित क्यों नहीं करता।[23] इतना ही नहीं द्रौपदी का उलाहना- 'नाथ, न लज्जन्ते एते। त्वमपि तावन् मा विस्मार्षीः।'[24] के बाद द्रोपदी का कथन भीम के क्रोध को शान्त नहीं होने देता। अन्य लोगों की उलाहनाएँ भी

आग में घी का काम करती हैं। भीम के सामने ही द्रौपदी की चेटी भानुमति के उपहास पूर्ण कथन- 'अयि याज्ञसेनि! पञ्चग्रामाः प्रार्थ्यन्त इति श्रूयते। तत् कस्मादिदानीमपि ते केशा न संयम्यन्ते।'[25] के प्रत्युत्तर में अपने कथन – 'अयि भानुमति! युष्माकममुक्तेषु केशहस्तेषु कथमस्माकं देव्याः केशाः संयम्यन्त' इति। को बोलती है। उसके पश्चात् उत्तेजित भीम प्रतिज्ञा करता है कि हे देवी फड़कती बाजुओं में थिरकती प्रचण्ड गदा के प्रहार चूर्ण-चूर्ण जंघा वाले दुर्योधन के गाढ़े खून से सने हाथों तुम्हारे बालों को संवारेगा यह भीम।[26]

अपने परिजनों के प्रति श्रद्धावान होते हुए भी अपने हक-अधिकारों के प्रति सचेत भीम अपने स्वाभिमान के साथ कभी भी समझौता नहीं करता। धृतराष्ट्र भी उसके पराक्रम से भयभीत रहता है।[27]

भीम एक योद्धा है। वह दुर्योधन को अकेले ही लड़ने की चुनौती देते हुए कहता है कि- अयि भोः कौरवराज! कृतं बन्धुनाशदर्शनमन्युना। मैवं विषादं कृथाः पर्याप्ताः पाण्डवाः समरायोहमसहायः इति। पञ्चानां मन्यसेस्माकं यं सुयोधं सुयोधन। दंशितस्योत्तशस्त्रस्य तेन तेस्तु रणोत्सवः।।[28] भीम नृसिंह की भांति दुर्योधन का वक्षस्थल चीर कर उसका खून पी लिया ।[29] दुर्योधन के वध के बाद जब लोग भयभीत होकर भागने लगते हैं तब भीम स्वयं कहता है कि- नाहं रक्षो न भूतो रिपुरुधिरजलप्लाविताङ्गः प्रकामं, निस्तीर्णोरु-प्रतिज्ञा-जलनिधिगहनः क्रोधनः क्षत्रियोऽस्मि। भो भो राजन्यवीराः! समरशिखि-शिखा-दग्ध-शेषाः! कृतं वस्त्रासेनानेन लीनैर्हतकरितुरगान्तर्हितैरास्यते यत्।।[30] अपनी प्रतिज्ञा की पूर्ति की सूचना देता हुआ भीम कहता है कि उस दुष्ट की देह धराशायी कर दी। यह सचन्दन रक्त अपनी देह पर लपेट रखा है। सेवक, मित्र तथा योद्धाओं के साथ सम्पूर्ण कौरव वंश युद्धाग्नि में जल चुका है। जिसका आप नाम ले रहे हैं अब तो उसका नाम मात्र ही रह गया है। यह चतुस्समुद्र सीमा वाली धरती आपको समर्पित है।[31] तथा द्रौपदी से भीम कहते हैं कि-सयम्यतामिदानीं -----इयं वेणी।

अर्जुन- अर्जुन युधिष्ठिर का तीसरे क्रम का अनुज तथा कृष्ण का मित्र है। वह वीर योद्धा व द्रढ़प्रतिज्ञ है- पुत्रवध से क्रुद्ध होकर अर्जुन ने सूर्यास्त से पूर्व जयद्रथ के वध की प्रतिज्ञा की है।[32] अर्जुन कहने की अपेक्षा करने में भरोसा करता है। अर्जुन दुर्योधन की धमकियों को गम्भीरता से न लेने के लिए कहता हुआ भीम से कहता है कि- 'अप्रियाणि करोत्येष वाचा शक्तो न कर्मणा। हतभ्रातृशतो दुःखी प्रलापैरस्य का व्यथा।।'[33]

अर्जुन धृतराष्ट्र व गान्धारी का आदर करता है। वह उनके पुत्र से प्राप्त हो रहे दुःख को और अधिक नहीं बढ़ाना चाहता।[34] फिर भी, वह उनके अभिवादन के बिना नहीं जाना चाहते। इस प्रकार अर्जुन इस नाटक के केन्द्र में न होते हुए युधिष्ठिर की सिद्धि में सहायक होता है।

कर्ण - कर्ण दुर्योधन का घनिष्ट मित्र है। वीर व दानी होते हुए भी दुर्योधन के दुष्प्रभाववश दर्प व ईर्ष्या से नहीं बच पाया। वह द्रोण का उपहास उड़ाता है। निर्वीर्य वा सवीर्य वा मया नोत्सृष्टमायुधम्। यथा पाञ्चालभीतेन पित्रा ते बाहुशालिना।।'[35] धृष्टद्युम्न से डरकर शस्त्र त्यागी तुम्हारे पिता के समान मैंने किसी बलवान या निर्बल के सम्मुख शस्त्र नहीं त्यागे। कर्ण अपने व्यक्तित्व के बारे में अवगत कराता हुआ स्वयं कहता है कि सूतो वा सूतपुत्रो वा यो वा को वा भवाम्यहम्। दैवायत्तं कुले जन्म मदायत्तं तु पौरुषम्।।[36] दुर्योधन के कथनानुसार धृतराष्ट्र कर्ण के राजनीतिक गुरु हैं।[37]

कर्ण का द्रोण के साथ द्वेष दुर्योधन की युद्धनीति की विफलता का एक कारण बनता है। अश्वत्थामा भी उस द्वेष को निभाता है।[38] दुर्योधन-सुन्दरक संवाद (पृ. 223) में कर्ण के व्यक्तित्व का वर्णन करते हुए सुन्दरक कहता है कि- ''ततश्च देव! अवधीरित-सकल-धानुष्कचक्र-पराक्रम-शालिनः सुतस्य तथाविधेन समरकर्मारम्भेण हर्ष-रोष-करुणा-शङ्का-सङ्कटे वर्तमानस्य स्वामिनो-ऽङ्गराजस्य निपतिता शर- पद्धति भीमसेने बाष्प-पर्याकुला दृष्टिः कुमारवृषसेने।'' यहाँ जीवन के हर्ष, रोष, करुणा तथा शङ्का के पलों का वर्णन कर कर्ण के व्यक्ति को उद्घाटित किया गया है। इस प्रकार कर्ण का व्यक्तित्व दुर्योधन का साथ देने से कलुषित होते हुए भी दान व वीरता से सम्पन्न होने से प्रशंसनीय है।

दुर्योधन –

दुर्योधन हस्तिनापुर का स्वघोषित युवराज है। वह ईर्ष्यालु तथा दम्भी प्रकृति का है। उसका पाण्डवों के साथ राजनीतिक द्वेष है। वह समय-समय पर पाण्डवों के साथ छल-प्रपञ्च रचता है। वह पाण्डवों को उनके हिस्से का साम्राज्य देने को तैयार नहीं है। उसके इन्हीं दोषों के कारण उसकी वीरता कलुषित है। जैसे दुश्मनी निभाता है वैसे ही वह मैत्री निभाने में पीछे नहीं हटता। कर्ण के साथ मैत्री जीवन पर्यन्त निभाता है। उसके व्यवहार में औचित्य का अभाव है। उन्मत्त दुर्योधन

कब क्या कहना व करना है का विवेक ही नहीं कर पाता है। नाटककार कञ्चुकी के माध्यम से सूचित करवाते हैं कि-

दुर्योधन भीष्म के शरसायी हो जाने पर दुःखी नहीं अभिमन्यु की मौत पर खुश है। इतना ही नहीं युद्धकाल में भी इसे स्त्रीरमण सूझ रहा है।[39] इस विवरण से यह स्पष्ट हो जाता है कि अहंकार व बदले की भावना में विवेकशून्य हुआ व्यक्ति दुर्योधन की भाँति संवेदना शून्य हो जाता है।

सुयोधन और कञ्चुकी के संवाद के माध्यम से भी उसके छल-कपट का रहस्योद्घाटन हो जाता है। राजा- ''विनयन्धर किमाह भवान्? एकाकी बहुभिर्बालो लूनशरासनश्च निहत इत्यत्र का श्लाघा कुरुपुङ्गवानाम्। मूढ, पश्य- हते जरति गाङ्गेये, पुरस्कृत्य शिखण्डिनम्। या श्लाघा पाण्डुपुत्राणां सैवास्माकं भविष्यति।।''[40] वह अक्सर हड़बड़ाहट में रहता है। जबान भी लड़खड़ाने लगती है। वह कहना कुछ चाहता है जबान से निकलता कुछ है- ''सहभृत्यगणं सबान्धवं सहमित्रं ससुतं सहानुजम्। स्वबलेन निहन्ति संयुगे न चिरात्पाण्डुसुतः सुयोधनम्।।''[41] जबकि वह कहना चाहता है कि- ''सहभृत्यगणं सबान्धवं सहमित्रं ससुतं सहानुजम्। स्वबलेन निहन्ति संयुगे न चिरात्पाण्डुसुतं सुयोधनः।।''[42]

दुर्योधन शंकालु प्रकृति का है। इतना ही नहीं उद्विग्न चित्त सुयोधन अपनी पत्नी के स्वप्न की अधूरी वार्ता सुनकर उसके चरित्र पर आशंका कर बैठता है। जो कि पुरुष की दुर्बलता का सूचक है। अधूरी जानकारी के आधार पर व्यवहार विनाशक ही सिद्ध होता है।[43]

जब दुःशला के साथ आई जयद्रथ की माता शङ्कित होकर सुयोधन से कहती है कि-'अद्य खलु पुत्रवधामर्षोद्दीपितेन गाण्डीविनोनस्तमिते दिवसनाथे तस्य वधः प्रतिज्ञातः।'[44] तब दुर्योधन का कहना कि- हस्ताकृष्ट-विलोल-केश-वसना दुःशासनेनाज्ञया, पाञ्चाली मम राजचक्रपुरतो गौर्गौरिति व्याहृता। तस्मिन्नेव स किं नु गाण्डिवधरो नासीत्पृथानन्दनो, यूनः क्षत्रियवंशजस्य कृतिनः क्रोधास्पदं किं न तत्।।[45] मेरे अनुज दुःशासन ने मेरी आज्ञा से अर्थात् जब दोनों हाथों से द्रौपदी के खुले हुए केश तथा वस्त्रों को खींचा था एवं राजसमूह के सामने 'मैं गाय हूँ' 'गाय हूँ' कहकर चिल्लाया। उस समय क्या गाण्डीवधारी अर्जुन क्या क्षत्रिय नहीं थे। युवक क्षत्रिय पुत्र के क्रोध के लिए इतना पर्याप्त नहीं था? इससे ज्ञात होता है कि दुर्योधन में राजा के योग्य व्यक्तित्व का अभाव है। दुर्योधन आडम्बरी है। वह वैदिक

उपासक होने का आडम्बर करता है। उससे भानुमति का कथन है कि - ''आर्यपुत्र! परिहार्यतामेतदनिमित्तं प्रसन्नब्राह्मणवेदानुघोषेण होमेन च।''[46] इतना ही नहीं दुर्योधन के मुख से 'पुण्यवन्तो हि दुःखभाजो भवन्ति।'[47] जैसे आदर्श कथन भी मजाक लगते हैं। दुर्योधन के कथन- दुर्योधन – ''अहो मुग्धत्वमबलानां नाम।'' अबलाओं की मूर्खता धन्य है, से उसकी असंवेदनशीलता तो सूचित होती ही है, साथ ही स्त्रियों के प्रति उपेक्षाभाव भी उद्घाटित होता है।

दुर्योधन का दुर्बल पक्ष यह भी है कि वह हर बात को हल्के में लेता है। जैसे कि वह कहता है कि- ''दुःशासनस्य हृदय-क्षतजोम्बु-पाने, दुर्योधनस्य च यथा गदयोरुभङ्गे। तेजस्विनां समरमूर्धनि पाण्डवानां ज्ञेया जयद्रथवधेपि तथा प्रतिज्ञा।।''[48] वह दम्भी है, उसे अपने पक्ष में महाबलिओं के होने का दम्भ है।[49]

दुर्योधन हमेशा शंकित रहता है।[50] दुर्योधन भानुमती के स्वप्न को अधूरा सुनकर ही आपा खो बैठता है।[51] दुर्योधन अपने अन्तःकरण की बात की उपेक्षा करके विनाश को प्राप्त होता है। यद्यपि उसे पता है कि उसने भरतकुल परम्परा के विपरीत कार्य किया है। सब कुछ हार जाने के बाद राज्य प्राप्ति भी नहीं भाती। अतः वह सोचता है कि मेरी मौत भले हो जाये पर भीम के हाथों न हो। 'घातितो शेष बन्धो र्मे किं राज्येन जयेन वा।'[52] बदले की भावना में जलते दुर्योधन में हितैषी की पहचान का अभाव है। दुर्योधन अपनी हठ के आगे विदुर के नीतिपूर्ण परामर्श की उपेक्षा करता है। पिता धृतराष्ट्र की सलाह भी उसे पसन्द नहीं है। वह विवेकहीन है दुष्ट शकुनी उसके परामर्शदाता बने हुए हैं। यह दुर्गुण भी उसके विनाश को सुनिश्चित करते हैं।[53] दुर्योधन युद्ध के अन्तिम समय में छिप जाता है जो कि उसकी कायरता का परिचय है।[54]

धृतराष्ट्र - धृतराष्ट्र राजा होते हुए भी पुत्र मोह में मौन बने हुए हैं। उनके होते हुए भी सम्पूर्ण अधर्म घटित होता है। राजधर्म के लिए उनके हृदय में कोई वेदना नहीं दिखती जबकि पुत्र के लिए वेदना दिखती है। घायल दुर्योधन से पूछते हैं कि 'सह्या पुत्रक! वेदनेति न मया पापेन पृष्टो भवान्।'[55] यद्यपि वे राजा हैं फिर भी पूरे नाटक में दुर्योधन ही राजा के रूप सामने आते हैं।

अश्वत्थामा - दुर्योधन के पक्ष से युद्ध लड़ने वाला योद्धा जो आचार्य द्रोण का पुत्र है। वह अपने पिता की हत्या का बदला लेने के लिए पागल रहता है।[56] वह सगुन-अपसगुन में भरोसा करता है। वह कायरों की तरह मरने को अनुचित मानता है।

वह सोचता है कि यदि युद्ध क्षेत्र से भागने पर मृत्य भय न रहे तब तो भागना उचित है। लेकिन मृत्यु तो नियत है तो व्यर्थ में ही अपना यश मलिन क्यों किया जाये।[57] युद्ध जीतने के लिए युधिष्ठिर के द्वारा सारी नीतिगत मर्यादायें तोड़ने से व्यथित है।[58] वह भावुक होकर आत्महत्या करने की सोचता है। परन्तु सूत के द्वारा रोक दिया जाता है।[59] अश्वत्थामा अपने पिता के अनादर पूर्वक सिर कुचले जाने से भी कुपित है।[60] अश्वत्थामा अतीत के गौरव का भी दम्भ भरता है। अश्वत्थामा अपने पिता के साथ कर्ण के वैरभाव को आगे बढ़ता है। वह भी उससे द्वेश रखने लगता है।[61] इस प्रकार अश्वत्थामा द्वेशी तथा तम्भी है।

स्त्री व्यक्तित्व - सम्पूर्ण नाटक में स्त्री व्यक्तित्व भी विविध पहलुओं में व्यक्त हुआ है। कुछ प्रमुख स्त्री पात्रों का व्यक्तित्व इस प्रकार है।

द्रोपदी - पाण्डव-पत्नी द्रौपदी को कृष्णा नाम से पुकारा जाता है। उसकी हालत को देखकर भीम का क्रोध बढ़ जाता है। द्रौपदी के द्वारा दुर्योधन का उपहास द्रौपदी के अपमान का कारण बनता है। फिर युद्ध की स्थिति आ जाती है। जब युधिष्ठिर कहते हैं कि बोली से जीवन का संशय पैदा हो जाता है। तभी द्रौपदी को अपना अपराध स्मरण हो आता है। वह कहती है कि- 'महाराज! पाञ्चाल्येति कि न भणितम्।'[62] द्रोपदी के अपमान को पाँच गाँव लेकर भुला देने की उलाहना के वर्णन से ज्ञात होता है कि स्त्री के सम्मान को धन देकर अपराधी के बचाने की अन्यायपूर्ण नीति समाज में रही है।

चेटि - अयि याज्ञसेनि। पञ्चग्रामाः प्रार्थ्यन्त इति श्रूयते। तत् कस्मादिदानीमपि ते केशा न संयम्यन्ते।[63] इस कथन से यह भी ज्ञात हो जाता है कि हर समय स्त्री ही स्त्री के खिलाफ होकर पुरुषों के दुष्कर्मों को छुपाने में मदद करती रही है। द्रौपदी अपने अपमान को सहन नहीं पाती है। बार-बार आत्मग्लानि से मर जाना चाहती है। दुर्योधन के आतंक के कारण सती हो जानी चाहती है। वह कहती है कि- 'महाराज एवं करोतु। अहं पुनर्ज्वलनं प्रवेक्ष्यामि।'[64] पुत्रशोक से दुःखित द्रौपदी धैर्य नहीं खोती है तथा घटोत्कच की मां को भी ढांढस बंधाती है।[65] राक्षसी की वार्ता के माध्यम से सुभद्रा तथा द्रौपदी की अभिमन्यु की मृत्यु पर अधीरता का उल्लेख स्त्री के वात्सल्य भाव तथा पुत्रशोक को व्यक्त किया गया है। भीम की मृत्यु की मिथ्या खबर पाकर विलाप करती हुई द्रौपदी अपने आप को दासी/सेविका के रूप में व्यक्त

करती है।[66] भीम द्रौपदी को हमेशा एक पवित्र स्त्री के रूप में आदर देता है। वह उसे याज्ञसेनी नाम से संबोधित करता है- ''कथयत भवन्तः कस्मिन्नु देशे याज्ञसेनी सन्निहितेति।''[66]

नाटक के अन्त में द्रौपदी के अपमान का बदला दुर्योधन के वध के पश्चात् उसके रक्त से उसके केशों को रंगने से पूर्ण हो जाता है। युद्ध समाप्त हो जाता है। जगह-जगह द्रौपदी वीर-भार्या के रुप में सामने आती है।

भानुमति - भानुमति दुर्योधन की पत्नी है। अपने पति के व्यवहार से तथा युद्ध के हालातों से मानसिक रूप से परेशान रहती है।[67] चेटी से द्रौपदी के प्रति उलाहना पूर्ण वचनों से उसकी अविवेकिता सूचित होती है। चेटि- अयि याज्ञसेनि। पञ्चग्रामाः प्रार्थ्यन्त इति श्रूयते। तत् कस्मादिदानीमपि ते केशा न संयम्यन्ते।[68] वह वारविलासिनियों के गीतों के द्वारा जगायी जाती है। भानुमति के सपने टूटने की वजह वाराविलासिनियों के प्रातःकालीन गीत ध्वनियों से जागरण के विवरणों से तत्कालीन राजाओं की विलासिता भी सूचित हो जाती है।[69]

गान्धारी - दुर्योधन की माता गान्धारी दुर्योधन को युद्ध से विरत हो जाने का आग्रह करती है। उसको राज्य की अपेक्षा दुर्योधन के प्राण जरूरी हैं। 'त्वमसि तावदेकोस्यान्धयुगलस्य मार्गोपदेशकः। तच्चिरं जीव। किं मे राज्येन जयेन वा।' पुत्र मोह में पुत्र के हठ के आगे मौन है। फिर भी उसका वात्सल्य भाव पञ्चम अङ्क के आरम्भ में देखने को मिलता है। वह दुर्योधन को कहती है कि युद्धकर्म से विरत हो जाओ। पिता की बात मान लो।[70]

उपर्युक्त विवरणों से ज्ञात होता है कि युधिष्ठिर के व्यक्तित्व का सबल पक्ष – भ्रातृ प्रेम, उग्र न होना, विनाशकारी युद्ध को टालने के लिए तैयार रहना, मानवीय संवेदना से युक्त होना, सही-गलत की समझ होना, सत्य का पक्षधर होना आदि है। साथ ही किसी पर भी आसानी से विश्वास कर लेना तथा जुआ खेलना और सर्वस्व दाव पर लगा देना उनके दुर्बल पक्ष हैं। भीम बहुत जल्दी उत्तेजित हो जाता है। भावावेश में बड़े-बड़े निर्णय कर बैठता है। फिर भी, उनके क्रोधी स्वभाव और बलवान होने से सत्तापक्ष भी भयभीत रहता है। स्त्रीगौरव के प्रति भीम अधिक संवेदनशील दिखाई देता है। अर्जुन की बात करें तो सर्वश्रेष्ठ धनुर्धर होते हुए भी इस नाटक में प्रत्यक्ष रुप से कहीं भी सामने नहीं आता। भीम का प्रतिद्वन्द्वी पात्र

दुर्योधन है जिसे कई जगह सुयोधन भी कहा गया है। दुर्योधन एक योद्धा होते हुए भी एक कुशल रणनीतिकार नहीं है। वह अपने दल के सेनापतियों तक को एकमत नहीं रख पाता। द्रोण तथा कर्ण के मध्य द्वेष रहता है। अश्वत्थामा भी कर्ण से द्वेष रखता है। अगर धृतराष्ट्र की बात की जाये तो वह राजा होते हुए भी सारे निर्णय पुत्रमोह के कारण दुर्योधन के द्वारा ही लिए जाते हैं। दुर्योधन भी उनकी नहीं सुनता।

स्त्री पात्रों के व्यक्तित्व की बात की जाये तो हम पाते हैं कि द्रोपदी प्रधान स्त्रीपात्र है जिसके द्वारा दुर्योधन के उपहास से तिरस्कार की परम्परा आरम्भ होती है तथा उसी के वेणीसंहार के साथ युद्ध की समाप्ति होती है। द्रौपदी नीतिनिपुण है समय समय पर भीम आदि को अपने अपमान की घटना को भूलने नहीं देती। पुत्रों के प्रति उसका वात्सल्य भाव भी दिखता है। गान्धारी का पुत्रमोह देखने को मिलता है। दुर्योधन की पत्नी भानुमति में स्त्री होते हुए भी स्त्री विरोधी व्यवहार करते हुए देखा जाता है।

वेणीसंहार के चतुर्थ अङ्क में अर्जुन के साथ कुमार वृषसेन के युद्ध के विवरण को सुनाता हुआ सुन्दरक कहता है कि- 'चापधारिणा कुमारवृषसेनेन मर्मभेदकैः परुषविषमैः श्रुतिपथकृतप्रणयैर्निभर्त्सितो गाण्डीवी बाणैर्न पुनर्दुष्टवचनैः।'[71] यहाँ हम पाते हैं कि एक अच्छे व्यक्तित्व की पहचान है कि व्यक्ति अपशब्दों का प्रयोग नहीं करता अगर विरोध करता है या वैर निभाता है तो खुल के निभाता है। वृषसेन के युद्धकौशल की सराहना शत्रुपक्ष भी करता है। उसका उत्साह वर्धन भी किया जाता है। उत्साह- व्यक्तित्व का एक अहं पहलू है।[72] दुःख जीवन का सच है। 'पुण्यवन्तो हि दुःखभाजो भवन्ति।'[73] दुर्योधन बदले की भावना कभी सुख नहीं देती।[74] रिश्ते-नातों के बीच खींचतान भी यहाँ देखने को मिलती है। जो सदा दुखद ही साबित होती है। द्रोण-कर्ण-जयद्रथ द्वारा अभिमन्यु की अनीतिपूर्ण हत्या, शिखण्डी को सामने करके भीष्मपितामह की हत्या आदि ने द्रौपदी के अपमान से उपजे युद्ध के हालातों को और अधिक विध्वंसक बना दिया। अतः लोक को शिक्षा प्राप्त होती है कि अनीतिपूर्ण व्यवहार से बचते हुए ही दुखों के बचा जा सकता है। नाटक के तृतीय अङ्क के आरम्भ में विकृत वेष वाली वसागन्धा राक्षसी तथा रुधिरप्रिय राक्षस का प्रवेश होता है। जो अपने लिए मानवीय रक्त और

मांस की पूर्ति की निरन्तरता के लिए युद्ध की निरन्तरता की कामना करते हैं। वे मानवीय रुधिर व मांस इकट्ठा करते हैं। यह नरभक्षी व्यक्तित्व को उजागर करता है। घटोत्कच की माँ हिडिम्बा इन्हीं के परिजन हैं।

व्यक्तित्वहीन संतान हमेशा दुःख देती है। जैसे कि अपने सौ पुत्र होते हुए भी दुःखी होकर गान्धारी कहती है कि- हा वीरप्रसविणि गान्धारि! दुःखशतं प्रसूता न सुखशतम्।[75] द्यूत की लत हो या कोई व्यसन सबको लज्जित करा देते है। विना सोचे बोली गयी बात संकट में डाल देती है।[76] भीम का प्रतिज्ञा पूर्ण करना दृढ़संकल्पी व्यक्तित्व की प्रेरणा देता है। नाटक के अन्त में आकाश से पुष्पवर्षा के द्वारा सिद्धजन स्वागत करते हैं। सर्वमङ्गल कामना के साथ नाटक पूर्ण हो जाता है। इस प्रकार नाटक सबको आनन्द से भर देता है। आनन्दमय जीवन ही अच्छे व्यक्तित्व का ध्येय है।

संदर्भ -

1 *वेणीसंहार-6.40 के बाद भीम का कथन*

2 *वही-6.45*

3 *वही-6.40 के बाद युधिष्ठिर का कथन*

4 *वही-1.25*

6 *वही- 1.6*

7 *वही- 1.7*

8 *वही- 1.8*

9 *वही- 3.14*

10 *वही- 6.28 के बाद*

11 *वही-6.16 के बाद तथा 6.44 के बाद युधिष्ठिर का कथन*

12 *वही – 6.17*

13 *वेणीसंहार- 6.29 से पूर्व युधिष्ठिर कथन।*

14 *वेणीसंहार -6.25*

15 *वेणीसंहार- 6.31*

16 *वेणीसंहार-6.39*

17 *वेणीसंहार-6.41*

18 *वेणीसंहार-6.44*

19 वेणीसंहार-1.11 से पूर्व भीम का कथन।

20 वेणीसंहार-1.12

21 वेणीसंहार-1.12 के पश्चात् भीम का कथन।

22 वेणीसंहार-1.15 23 वेणीसंहार-1.17

24 वेणीसंहार-1.17

25 वेणीसंहार-1.20 से पूर्व चेटी का कथन।

26 वेणीसंहार-1.21

27 वेणीसंहार – 5.5

28 वेणीसंहार- 6.10

29 वेणीसंहार – 4.1

30 वेणीसंहार-6.37 31 वेणीसंहार-6.39

32 वेणीसंहार-2.24 के पश्चात् जयद्रथ की माता का कथन।

33 वेणीसंहार -5.31 34 वेणीसंहार- 5.27

35 वेणीसंहार-3.37 36 वेणीसंहार-3.37

37 वेणीसंहार – 5.22 38 वेणीसंहार 5.38 से पूर्व।

39 वेणीसंहार-2.2 40 वेणीसंहार-2.4

41 वेणीसंहार-2.5 42 वेणीसंहार-2.6

43 वेणीसंहार-2.12

44 वेणीसंहार- 2.25 से पूर्व माता का कथन।

45 वेणीसंहार- 2.25

46 वेणीसंहार-2.24 के पश्चात् भानुमती का कथन।

47 वेणीसंहार-4.10 48 वेणीसंहार-2.28

49 वेणीसंहार – 5.5 50 वेणीसंहार – 2.14

51 वेणीसंहार -2.13

52 वेणीसंहार – 4.9

53 वेणीसंहार 4.9 के बाद सुन्दरक का कथन।

54 वेणीसंहार- 6.6 के बाद।

55 वेणीसंहार- 5.1

56 वेणीसंहार – 3.05

57 वेणीसंहार- 3.6

58 वेणीसंहार-3.15

59 वेणीसंहार – 3.18

60 वेणीसंहार -3.22

61 वेणीसंहार-5.38 के बाद।

62 वेणीसंहार- 6.1 के बाद द्रोपदी का कथन।

63 वेणीसंहार-1.20 से पूर्व (भानूमती का कथन)

64 वेणीसंहार 6.29 से पूर्व।

65 वेणीसंहार -3.3 के बाद राक्षस का कथन।

66 वेणीसंहार -6.34 से पूर्व द्रोपदी का कथन।

66 वेणीसंहार- 6.35 से पूर्व चेटी की सूचना।

67 वेणीसंहार- 2.9 से पूर्व।

68 वेणीसंहार-1.20

69 वेणीसंहार-2.13 से पूर्व भानूमति का कथन।

70 वेणीसंहार- 5.4 के बाद गान्धारी का कथन।

71 दुर्योधन-सुन्दरक संवाद पृ. 220

72 वेणीसंहार - दुर्योधन-सुन्दरक संवाद पृ. 229

73 वेणीसंहार 4.10 के बाद दुर्योधन कथन।दुर्योधन-सुन्दरक संवाद पृ. 236

74 पापोहमङ्कृति— तानुजनाशदशह्ल— वेणीसंहार 5.2

75 वेणीसंहार- 5.8 से पूर्व गान्धारी का कथन।

76 यधिष्ठिर कहते है कि- भीमेन क्लियसाहसेन रभसात्स्वल्पोवशेषे जये, सर्वे जीवितसंशयं वयममी वाचा समारोपिताः।

16

वेणीसंहार नाटक में मार्मिक प्रसंग

सिद्धनाथ खजूरिया

वेणीसंहार नाटक के प्रारंभ में जब श्री कृष्ण पाण्डवों के दूत बनकर व्यास आदि ऋषियों के साथ हस्तिनापुर कौरवों की सभा में पाण्डवों की ओर से से संधि प्रस्ताव लेकर जा रहे थे उस समय यह बात जब पाण्डवों के माध्यम से भीम को पता चलती है तो सहसा वह कौरवों द्वारा पाण्डवों पर किये गये पूर्व अत्याचारों को स्मरण कर क्रोधित हो अपने अनुज सहदेव को इस व्यंग्योक्ति से संबोधित करता है-

मध्नामि कौरवशतं समरे न कोपाद्, दुःशासनस्य रूधिरं न पिबाम्युरस्तः।
संचूर्णयामि गदया न सुयोधनोरू, संधि करोतु भवतां नृपतिः पणेन।।[1]

क्या मैं युद्ध में कौरवों का मर्दन नहीं करूंगा, दुःशासन के हृदय का रूधिर नहीं पिऊंगा, गदा से दुर्योधन की जंघा नहीं तोडूंगा हे सहदेव! भले ही आपके भैया संधि कर ले परंतु मुझे यह संधि स्वीकार्य नहीं है। यद्यपि भीमसेन का क्रोध उचित है फिर भी यदि श्रीकृष्ण युधिष्ठिर से परामर्श करने दूत कर्म के लिये उद्यत हुए हैं तो निश्चय ही उसके पीछे कोई निहित संदेश होगा। अतः यहां भीम की क्रोधोक्ति ''दौत्य कर्म'' के अनुरूप असमीचीन है। वहीं द्रोपदी जब गांधारी के पास प्रणमार्थ जाती है एवं वापस आने को उद्यत होती है तब दुर्योधन-पत्नी भानुमती द्रोपदी को प्रत्यक्ष कटुवचनों से व्यंग्योक्ति करती है- 'अयि याज्ञसेनी, कस्माधुश्माकमद्यपि केशा न संयम्यन्ते। अर्थात् अरी याज्ञसेनी! तुमने अभी तक केश नहीं बांधे जबकि तुम्हारे पति पांच गांव प्राप्त कर संधि कर रहे हैं। इसका तात्पर्य यह है कि तुम्हारे केश खुले रखने की प्रतिज्ञा अब पूरी नहीं होने वाली है। यह संवाद आग में घी डालने वाला जैसा है। इस निमित्त भीम का क्रोध द्रोपदी के केश संयमन संकल्प के लिये उचित है।

प्रत्युत्तर में द्रोपदी की दासी का यह कथन कि- 'अयि भानुमति, युष्माकममुक्तेषु केशहस्तेषु कथस्माकं देव्याः केशाः संयमन्ति इति।' जब तक आपके केश बंधे हैं तब तक हमारी महारानी के केश कैसे बंध सकते हैं? तात्पर्य आपके विधवा होने से पहले द्रोपदी के केशों को संयमन असंभव है। यह कवि की संवाद कुशलता का अदम्य उदाहरण है।

संधि प्रस्ताव विफल हो जाने पर युद्ध के लिये उद्धत भीमसेन का द्रोपदी के प्रति कथन है-

भूयः परिभवक्लान्ति लज्जाविधुरतिनानम्।
अनिः शोषिकारव्यं न पश्यसि वृकोदरम्।।[2]

सदैव के अपमान से उत्पन्न दुःख और लज्जा से म्लान मुख वाले अपने पति को कौरवों के समाप्त हुए बिना नहीं देखोगी। युद्ध कोई एक दिन में समाप्त नहीं हो जाएगा, न ही एक ही दिन में कौरवों का वध हो जाएगा तथापि भीम का कथन द्रौपदी के वेणीसंहार रूप प्रयोजन को सिद्ध करने का मार्ग तो है, क्योंकि आशा और विश्वास ही स्त्रियों को जीवित रखने का सबसे बड़ा आश्रय है। मेघदूत में महाकवि कालिदास भी यक्षिणी के जीवित रहने का कारण आशा को ही बताते हैं -

आशाबन्धः कुसुमसदृशं प्रायशो ह्यङ्.गनानां
सद्यः पति प्रणयि हृदयं विप्रयोगे रूणद्धि ।।[3]

भानुमति जब स्वप्न में महाभारत के सबसे सुंदर पुरूष पात्र नकुल को देखकर उस पर आसक्त होने की बात अपनी सखियों को सुनाती है तो दुर्योधन इसे वास्तविक समझकर मन ही मन भर्त्सना करते हुए कहता है-

यस्मिश्वरप्रणयनिर्भरबद्धभावमावेदितो रहसि मत्सुरतोप भोगः।
तत्रैव दुश्चरितमघ निवेदयन्ती ह्वीणासि पापहृदये न सखीजनेऽस्मिन्।।[4]

अर्थात् अरी पापचित्ते, जिन सहेलियों से चिरकाल के प्रेम और अत्यन्त आसक्ति के साथ मेरी रमणक्रिया की बात करती थी। आज वही उन सखियों से अपने दुष्कृत्यों की वार्ता करते हुये तुम्हें लज्जा उत्पन्न नहीं होती। तब अगले ही क्षण जब उसे यह पता चलता है कि यह तो स्वप्न वृत्तान्त था तब-

दिष्टयार्धश्रुतविप्रलम्भजनितक्रोधादहं नो गतो।
दिष्टया नो परूषं रुषार्थकथने किञ्चिन्मया व्याहृतम्।।

अच्छा हुआ कि आधा ही सुनकर आत्मवंचना से उत्पन्न क्रोध के वश में न हुआ, सौभाग्य की बात है कि मैंने सम्पूर्ण वार्ता पूरी न होने तक कटुवचन का प्रयोग नहीं किया।

स्वप्न में ही जब भानुमति एक नेवले द्वारा सौ सर्पों का वध होना देखती है तो विचलित हो जाती है अपनी सखियों से उसके शुभ-अशुभ का कारण जानना चाहती हैं तभी दुर्योधन वहाँ उपस्थित हो प्रत्युत्तर में कहता है-

पर्यायेण हि दृश्यन्ते स्वप्नाः काम शुभाशुभाः।
शतसंख्या पुनरियं सानुजं स्पृशतो व माम्।।[5]

है प्रिये स्वप्न तो शुभ अशुभ दिखाई देते रहते हैं परन्तु यह सौ की संख्या मेरे भाईयों की होने से मुझे कुंठित कर रही है। यहाँ कवि ने भानुमती के स्वप्न के माध्यम से यह बताने का प्रयास किया है कि अनीति पूर्वक किये गये कर्मों के परिणामों का व्यक्ति को पहले ही आभास हो जाता है जो उसके मनोबल को हतोत्साहित करता है और युद्ध में योद्धा का हतोत्साह होना उसकी पराजय निश्चित करता है। और जब वह अनुत्साह भी सहधर्मिणी के द्वारा प्रेरित हो तब तो कहना ही क्या? जबकि क्षत्रिय नारी इस प्रकार की शंका-कुशंका पर विश्वास नहीं करती है। यदि देखा जाए तो यह स्वप्नदृश्य भी दुर्योधन की पराजय में एक कारण सिद्ध होता है।

द्रोणाचार्य वध के उपरान्त जब उनका सारथि अश्वसेन अश्वत्थामा के पास आकर कहता है कि रक्षा कीजिये। आपके पिता द्रोणाचार्य मृत्यु को प्राप्त हो गये हैं। अश्वत्थामा मृत्यु का कारण जानना चाहता है प्रत्युत्तर में सारथि कहता है-

अश्वत्थामा हतः इति पृथासूनुना स्पष्टमुक्त्वा
स्वैरंशेषे गज इति किल व्याहृतं सत्यवाचा।
तच्छुत्वासौ दयिततनयः प्रत्यात्तस्य राज्ञाः।।[6]

आप ही उनकी मृत्यु के कारण है क्योंकि धर्मराज युधिश्ठिर ने ''अश्वत्थामा मारा गया' यह स्पष्ट रूप से उच्च्व स्वर में बोला तथा गज मारा गया यह धीरे से अस्पष्ट शब्द में कहा यह सुनते ही महाराज युधिष्ठिर के वचन को सत्य मानकर आपके पिता ने पुत्र मोहवश अपने शस्त्रों का परित्याग कर दिया। तत्समय धृष्टद्युम्न नें उनके समीप आकर अपनी प्रतिज्ञा को पूर्ण करते हुए उनका सिर धड़ से अलग कर दिया। पिता के वध से व्याकुल अश्वत्थामा ने पहले तो 'अजन्मनो

आनवितथं भवता किलोवत।[7] कहकर युधिश्ठिर की भर्त्सना की कि आपने कभी भी जन्म से आज तक झूठ नहीं बोला, लोगों ने आपको धर्मराज की संज्ञा देकर सदैव आप पर विश्वास किया, वहीं मेरे पिता द्रोणाचार्य ने आपकी बातों पर विश्वास कर शस्त्र त्याग दिए आखिर आपने मिथ्या वचन क्यों कहा?

वेणीसंहार नाटक में यह संवाद एक तरफ तो अवत्थामा के वचन में व्यंग्य को परिलक्षित करता है तो वहीं युधिष्ठिर का वचन मिथ्या न होकर सत्य सिद्ध होता हुआ दिखाई देता है क्योंकि यह बात सर्वविदित है कि इस धर्मयुद्ध में द्रोणाचार्य का वध ही पाण्डवों की विजय का मुख्य आधार था यदि वे लड़ते रहते तो युद्ध खत्म होने वाला नहीं था। ऐसे में युधिष्ठिर के वचन को मिथ्या कहे या सत्य युद्धभूमि में दोनों ही रूप में सर्वग्राहृय है। यही कथन वेणीसंहार को उत्कृष्ट बनाने का मुख्य बिंदु है। परशुराम शिष्य पिता द्रोण की मृत्यु के उपरांत पितृ शोक में अश्वत्थामा द्वारा शस्त्र त्याग कर शरीर त्यागने की बात सुनकर उसके मामा कृपाचार्य द्वारा उसे युद्ध के लिए प्रेरित किया जाता है कि तुम्हारे अतिरिक्त कौरव सेना में कौन योद्धा है जो पाण्डवों से तुम्हारे पिता की मृत्यु का प्रतिशोध ले सके-

भवेदभीष्मद्रोणं धार्तराष्ट्रबलं कथम्।
यदि तत्तुल्यकक्षेऽत्र भवान्धुरि न भुज्यते।।[8]

मैं कौरव सेना का सेनानायक बनाकर तुम्हें रणभूमि में ले जाना चाहता हूं क्योंकि तुम्हारे समान योद्धा द्वारा कवच आदि के धारण कर लेने पर तीनों लोकों में शत्रु थर-थर कांपने लगते हैं। फिर पाण्डव सेना में क्या सामर्थ्य जो तुम्हारा सामना कर सके। अश्वत्थामा यथेवं त्वरते मे परिभवानलदह्यमानमिदं चेतस्त प्रतीकार-जालावगाहनाय। तदहं गत्वा तातवधविशण्ण्मानसं कुरूपतिं जलावगाहनाय। तदहं गत्वा तातवधविशण्ण्मानसं कुरूपतिं सैनापति पदे स्वयं गृहण प्रणयसमशवासनया मन्दसन्तापं करोमि। अश्वत्थामा पूर्ण रूप से संतुष्ट हो स्वयं ही सेनापति बनकर पाण्डव विनाश की प्रतिज्ञा लेकर कुरूराज दुर्योधन के समीप जाता है। उधर द्रोणवध के उपरान्त दुर्योधन पहले ही कर्ण को सेनापति नियुक्त कर आगे के युद्ध की योजना बनाता हैं तब कर्ण एवं अश्वत्थामा के संवाद को कवि ने जिस प्रकार प्रदर्शित किया है वह संवाद योजना का चरमोत्कर्ष है-

प्रयत्नपरिबोधितः स्तुतिभिरद्य शेषे निशा-मकेशवमपाण्डवं भुवनमघ निः सोमकम्।
इयं परिसमाप्यते रणकथाऽद्य दोःशलिना। मपैतु नृपकाननातिगुरूरद्य भारो भुवः।।[9]

अश्वत्थामा कहता है कि मैं आज धरती को वासुदेव और पाण्डवों से शून्य बना दूंगा, पृथ्वी का भार आज ही न्यून कर डालूंगा। कर्ण कहता है कि इस प्रकार कहना सरल है परंतु करना कठिन है, मूर्ख व्यक्तियों के आंसू निकलते हैं क्रुद्ध व्यक्तियों के लिए हाथ में शस्त्र लेकर युद्धक्षेत्र में उतर जाना उचित होता है। इस प्रकार व्यर्थ बड़बड़ाना उचित नहीं। अश्वत्थामा क्रुद्ध होकर अरे राधागर्भ के भार सूत अधम! तू मुझे अश्रुपात करके बदला लेने का कह रहा है, शस्त्र के द्वारा नहीं। क्या तुम्हारी तरह मेरे भी शस्त्र गुरूशाप के कारण शक्तिहीन हो गये हैं। क्या तुम्हारी तरह मैं भी संग्राम से विमुख होकर यहाँ उपस्थित हुआ हूं और क्या तुम्हारी भांति लोगों की प्रशंसा करने में लगे रथकारों के वेश में मेरा भी जन्म हुआ है। जो मैं शत्रु के अपकार का बदला शस्त्र से न लेकर आंसुओं से लूं। **कर्ण की उक्ति- सूत्रो व सूतपुत्रो वा यो वा को वा भवाम्यहम्। दैवायत्तं कुले जन्म मदायत्तं तु पौरुषम्।**[10]

सूत हो चाहे सूत के पुत्र हो अथवा कोई हो, सत्कुल में जन्म देना विधाता के हाथों में है और पुरूषार्थ करना मेरे हाथों में है। तुम्हारे पिता की तरह मैं कायर तो नहीं हूं। जिन्होंने धृष्टद्युम्न से त्रस्त होकर शस्त्र त्याग किया और यदि उन्होंने शस्त्र का त्याग भी किया तो क्या बिना शस्त्र लिये हुए सशस्त्र शत्रु का प्रतिकार नहीं किया जा सकता। प्रत्युत वे तो केशकर्षण के समय अबलाओं की भांति मौन हो गये।

कर्ण के इस आवेश भरे वचन से अश्वत्थामा की क्रोधाग्नि धधक उठी।

कथमपि न निषिद्धो दुःखिना भीरूणा वा।
द्रुपद तनय पाणिस्तेन पित्रा ममाऽद्य !
तव भुजबलदर्पाध्मायमानस्य वामः।
शिरसि चरण एष न्यज्यते वारयैनम्।।[11]

मेरे पिता ने पुत्रशोक अथवा भय के कारण किसी भी प्रकार से धृष्टद्युम्न के हाथ को नहीं रोका परन्तु भुजबल के अभिमान में चूर तुम्हारे सिर पर आज मेरा पैर रखने से मुझे कोई नहीं रोक सकता प्रत्युत्तर में कर्ण की उक्ति कि तुम ब्राह्मण होने के कारण निःसन्देह अवध्य हो, परन्तु इस उठे हुए पैर को मेरी इस चमचमाती तलवार से कटा हुआ मानो।

अश्वत्थामा क्रोध में आकर अपने कंधे पर पड़ी ब्राह्मणत्व का बोध कराने

वाली जनेऊ को तोड़कर फेंक देता है तथा अपने को ब्राह्मण जाति से पृथक हुआ मानकर कर्ण से युद्ध करने को उद्धृत हो जाता है।

कर्ण और अश्वत्थामा के संवाद में कवि ने यह दिखाने का प्रयत्न किया है कि किस प्रकार एक ही पक्ष से लड़ने वाले दो योद्धा अपने राजा के ध्येय को भूलकर सेनापति जैसे पद को प्राप्त करने की होड़ में अपने पराक्रम के अभिमान से स्वामी का हित करने की अपेक्षा संवाद की निकृष्टता के कारण अहित करने पर उतारू हो जाते हैं। इस समय न तो अश्वत्थामा को अपने पिता की मृत्यु का शोक रहा और न ही कर्ण को अपने प्रिय मित्र दुर्योधन को दिया वचन याद रहा। यद्यपि मित्रता की सही कसौटी का उदाहरण महाभारत काल में यदि कहीं देखने को मिलता है तो वह कर्ण एवं दुर्योधन की एक दूसरे में अटूट निष्ठा है। अतः संवाद में उचित अनुचित का ज्ञान नहीं हो तो परिणाम कर्ण अवत्थामा के रूप में सामने है। इस संवाद को बिल्कुल परशुराम लक्ष्मण संवाद से जोड़कर देखा जा सकता है। फिर वहां भी मर्यादा का उल्लंघन नहीं किया गया जितना यहाँ नीच, अधम, मूर्ख जैसे अशोभनीय शब्दों का प्रयोग किया गया। उत्कृष्ट पात्रों की भाषा उत्कृष्ट एवं निकृष्ट पात्रों की भाषा निकृष्ट होना कवि की काव्य भाषा शैली का प्रमाण होती है। परंतु यहां उत्कृष्ट पात्रों द्वारा भी कवि ने अधम पात्रों की भाषा का प्रयोग करवाया है जो निश्चित ही कथानक के अनुरूप होने के कारण उचित ही है। दुःशासन वध के समय सूत (सारथि) एवं दुर्योधन संवाद का उत्कृष्ट निर्देशन देखने को मिलता है। भीम अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण करने को उद्यत हुआ तब दुर्योधन अपने रथ को दुःशासन की रक्षार्थ उसके समीप ले चलने को कहता है तब सारथि कहता है महाराज इस समय आपके घोड़े रथ को खींचने में असमर्थ है और आपकी इच्छापूर्ण करने में भी असमर्थ है क्योंकि हाथ में शस्त्र लेकर आते हुए भीमसेन द्वारा आपके प्रिय अनुज दुःशासन का वध कर दिया गया होगा। दुर्योधन विलाप करते हुए-

युक्तो यथेष्टमुपभोगसुखेषु नैव
त्वं लालितोऽपि हि मया न वृथाग्रजेन
अस्यास्तु वत्स तव हेतु रहे विपत्ते
यत्कारितोऽस्यविनयं न च रक्षितोऽसि ।।[12]

हे वत्स मैंने तुम्हें इच्छा के अनुकूल सामग्री के उपभोग में नहीं लगाया।

तुम्हें मैंने कभी भाई के सदृश प्यार नहीं किया। मैं बेकार ही आपका बड़ा भाई बना। आज तुम्हारी इस मृत्यु का सबसे बड़ा कारण मैं ही हूं; क्योंकि मैंने तुम्हें अग्रेसर तो किया, परंतु अंत में तुम्हारी रक्षा नहीं कर सका। मेरी ही आज्ञा से तुमने द्रौपदी के वस्त्र और केश का कर्षण किया जिसके परिणामस्वरूप आज तुम मेरे जीते जी मृत्यु को प्राप्त हुए हो।

दुर्योधन के इस कथन में नाटककार ने धूर्त दुर्योधन के मुख से स्वयं यह कहलाया है कि दुःशासन, भाई की आज्ञा से ही उस द्रौपदी के वस्त्रहरण जैसे नीच कर्म को करने के लिये उद्धत हुआ था अर्थात् अनैतिक कृत्य का परिणाम भी अनैतिक ही होता है, लेकिन व्यक्ति को इसका बोध तब, नहीं होता है जब वह अपने शौर्य, पराक्रम, अभिमान, दर्प, मद, मोह, आदि के नशे में चूर रहता है।

घातिताशेष बन्धोर्मे किं राज्येन जयेन वा।।[13]

अर्थात् जब मेरे समस्त परिवारीजन, बन्धु बान्धवों की समाप्ति हो गई तो फिर राज्य और विजय लाभ से क्या प्रयोजन ?

दुर्योधन को इस बात का भी पश्चाताप होता है कि आज प्रातः ही पिता धृतराष्ट्र एवं माता गांधारी द्वारा उन दोनों दुर्योधन एवं दुःशासन का सिर चूमकर आशीर्वाद दिया गया था। पर हाय रे विधाता! दोनों में से केवल मैं ही शेष बचा हूं। अनुज दुःशासन साथ नहीं है। अतः शिविर में आये हुए उन नेत्रबंद माता पिता के सम्मुख किस मुख से जाऊं, उनके पूँछने पर मैं क्या उत्तर दूंगा?

यदि वास्तविकता में देखा जाए तो दुर्योधन अब भी प्रतिशोध की ज्वाला में धधक रहा है। उसका ये भ्रातृशोक दिखावा है। यदि वह वास्तव में पश्चाताप की अग्नि से तापित होता है तो अब भी कुरूवंश के शेष बचे एक दीपक को विनाश से बचा लेता। उन अंधे माता-पिता की अन्तर्वेदना का सम्मान करते हुए युद्ध विराम की ओर अग्रसर हो जाता। परंतु गांधारी के कहने पर कि पुत्र तुम्हारे बाकी भाई तो मृत्यु को प्राप्त हो गये हैं। तुम्हारे अतिरिक्त हम दोनों का अब कौन सहारा है? हमें अब राज्य एवं विजय लाभ से क्या प्रयोजन है? तब अपनी माता के इन अंतःकरण से निकले वचनों को भी वह कायरतापूर्ण वचन की संज्ञा देते हुए तिरोहित कर देता है एवं आप एक क्षत्रिय की पत्नी एंव वीर पुत्र की माता कैसे हो सकती हो? यह आक्षेप भी लगाता है-

मातः ! किमप्यसदृशं कृपणं वचस्ते। सुक्षत्रिया क्व भवती क्व च दीनतैषा।
निर्वत्सले! सुतशतस्य विपत्तिमेतां। त्वं नानुचिन्तयसि रक्षसि मामयोग्यम्।।[14]

धृतराष्ट्र भी दुर्योधन को समझाते हुए कहते हैं कि जिन दो महारथियों के पराक्रम के सहारे तुमने पाण्डवों को तिनके के समान भी नहीं समझा था वे दोनों तो शत्रुओं के द्वारा रणभूमि में मारे गए। तत्पश्चात् सभी योद्धाओं की उपस्थिति में कर्ण पुत्र वृषसेन का वध कर दिया गया। अतः शत्रुपक्ष द्वारा समस्त प्रतिज्ञायें पूर्ण कर ली गई केवल तुम्हारे विषय में की गई प्रतिज्ञा शेष है। अतएव अभी भी समय है कि शत्रुविषयक अभिमान का मर्दन करके संधिविषयक मार्ग को अपना लो ताकि तुम्हारे इन नेत्रहीन माता-पिता के बुढ़ापे का सहारा बने रहो।

दायादा न ययोर्बलेन गणितास्तौ द्रोणभीष्मौ हेतौ।
कर्णस्यात्मजमग्रतः शमयतो भीत जगत फाल्गुनात्।।
वत्सानां निधनेन मे त्वयि रिपुः शंषप्रतिज्ञोऽअधुना।
भानं वैरिपु मुञ्च तात पितरावन्धाविमौ पालय।।[15]

दुर्योधन यहाँ पर भी धृतराष्ट्र के वचनों को स्वयं के लिये एवं कुरुवंश के लिए श्रेयस्कर नहीं मानता है और कहता है कि माता ने पुत्र प्रेम की व्याकुलता से एवं संजय ने मूर्खता के कारण मुझे युद्ध विमुख होने का उपदेश दिया; परंतु पिताजी आप तो क्षत्रिय राजा है ऐसे में आपका यह कथन मेरे पक्ष में उचित नहीं है। यदि यही करना था तो जब वासुदेव शान्तिदूत बनकर आये थे तभी उनके उपदेश को मान लिया होता तो आज मेरे सभी भाई मेरे साथ होते। वहीं एक भी भाई के मरण पर युधिष्ठिर ने जीवित न रहने की प्रतिज्ञा की है और मेरे सौ भाईयों की मृत्यु के बाद भी मैं पांडवों से संधि करके राज्य का सुख भोगूं, यह कहां का न्याय है। इससे तो अच्छा यह होगा कि मैं पाण्डवों में से किसी एक भाई का भी वध कर दूंगा तो युधिष्ठिर तो स्वयं भातृशोक में उनकी प्रतिज्ञानुसार मृत्यु का वरण कर लेंगे। यदि मैं युद्ध में मारा गया तो राजा सगर के समान आप भी इस हस्तिापुर पर राज्य करना जैसे राजा सगर के साठ हजार पुत्र कपिल मुनि के द्वारा भस्मसात कर दिए जाने पर उन्हीं ने पृथ्वी के शासन का भार उठाया था। वही भार आप भी उठाना, बस अंतर इतना है कि राजा सगर के साठ हजार पुत्र थे और आपके सौ पुत्र हैं।

कलितभुवना भुक्तैश्वर्यास्तिरस्कृत विद्विषः,
प्रणतिशिरसां राज्ञां चूड़ासहस्त्रंकृतार्चना।

अभिमुखमरीन्संख्ये हनन्तो हताः शतमात्मजा,
वहतु सगरेणोदां तातो धुरं सहितोऽम्बया।।[16]

महाराज धृतराष्ट्र, गान्धारी और दुर्योधन के संवाद में जो व्यंग्य, स्नेह, करूणा, भीरूता एवं कुटिलता वाले शब्दों की अभिव्यंजना हुई है वह पात्रानुकूल है तथा जिसमें कवि की संवाद योजना, स्पष्ट परिलक्षित होती दिखाई दे रही है। संवाद एवं कथोपकथन किस प्रकार काव्य में रसाभिव्यंजना करके निरन्तरता प्रदान करते हैं उसका उत्कृष्ट निदर्शन इन संवादों में दृष्टिगोचर होता है।

भीम एवं अर्जुन कर्ण-वध के उपरांत शिविर में जाते समय रणभूमि के रणभूमि के शिविर में उपस्थित धृतराष्ट्र एवं गांधारी को प्रणाम करना नही भूलते हैं वे शिष्टाचार की नीति का पालन करते हैं। तथापि भीम कुछ इस प्रकार के शब्दों द्वारा धृतराष्ट्र को प्रणामांजलि करते हैं-

कृष्णा केशेषु कृष्ट तव सदसि पुरः पाण्डवानां नृपैर्येः
सर्वे ते क्रोध वह्नौ कृशशलभकुलावज्ञया येन दग्धाः।
कृष्टा केशेषु भार्या तव तव च पशोस्तस्य राज्ञस्तयोर्वा
त्पुत्रैः पौत्रेश्च कर्मण्यतिगुरूणि कृते ताप साक्षी त्वमेव।।[17]

अर्थात् जिन राजाओं के द्वारा आपकी सभा में पाण्डवों की गृहिणी पाञ्चाली केश पकड़कर आकृष्ट की गई है। जिसके परिणामस्वरूप सभी कालकवलित हो गए हैं। इसलिए मै न तो भुजबल और न ही अभिमान के कारण आपको ये वचन कह रहा हूं। अपितु इन सभी दुष्कृत्यों के साक्षी आप ही हैं। अतः अपने अन्तर्मन की आवाज आप तक पहुँचा रहा हूँ। तत्पश्चात् युधिष्ठिर की आज्ञा से वे पुनः शिविर को लौट आते हैं।

भीम द्वारा यह प्रतिज्ञा किये जाने पर कि आज शाम तक दुर्योधन का वध नहीं किया तो स्वयं ही प्राण त्याग दूंगा, निश्चित ही इस नाट्यग्रंथ में की जाने वाली अंतिम प्रतिज्ञा है। इसी से जुड़ी युधिष्ठिर की प्रतिज्ञा परिलक्षित होती है। कहीं न कहीं नाटककार ने प्रतिज्ञा-प्रतिज्ञा शब्द का प्रयोग कर काव्य को निर्बाध रूप से बांधे रखा है। भीम की यह प्रतिज्ञा सुनकर जलस्तन्मनी विद्या का जानकार दुर्योधन एक सरोवर में जाकर छुप जाता है। ताकि किसी प्रकार दिन व्यतीत हो जाए एवं भीम की प्रतिज्ञा अधूरी रह जाए। अन्ततः भीम के क्रोध भरे वचनों को

दुर्योधन सहन नहीं कर पाता है एवं स्वयं ही सरोवर से निकलकर युद्ध कार्य में रत हो जाता है तदनन्तर भीम के हाथों मृत्यु को प्राप्त होता है।

युधिष्ठिर द्वारा वासुदेव के प्रति कहे हुए इन वचनों के साथ नाटक की संवाद योजना समाप्त होती है-

अकृपणमतिः कामं जीव्याज्जनः पुरूषायुषं, भवतु भगवन्भक्तिर्द्वेतं विना पुरूषोत्तमे।
दयितभुवनो विद्वद्वन्धुर्गुणेषु विशेषवि-त्सततसुकृती भूयाद् भूयः प्रसाधितमण्डलः।।[18]

लोग कृष्ण और रोगों से व्यथित न होकर आयुर्दाय के अनुकूल जीवित रहे। हे भगवन् बिना किसी संदेह के पुरूषोत्तम भगवान में भक्ति हो राजा समस्त लोगों से प्रेम करते हुए विद्वानों का पोषक बने।

वस्तुतः वेणीसंहार नाटक में नाटककार ने मर्मस्पर्शी विचारों और प्रसंगों की अवतारणा की है जिसे जानकर पात्रों के चरित्र और उनकी मनःस्थिति का जन्म होता है। बात-बात में पात्र अपने हृदय की बात कह देते हैं। पाठक उनके मन की उधेड़बुन और सारी हलचल को समझ लेता है।

संदर्भ -

1. *वेणीसंहारम्- भट्टनारायण, चौखम्बा अमर भारती, प्रकाशन, वाराणसी*
2. *वेणीसंहार प्रथम अंक श्लोक- 15, 26*
3. *मेघदूत-कालिदास, पूर्वमेघ, श्लोक-9*
4. *वेणीसंहार द्वितीय अंक श्लोक-12*
5. *वही 2/14* 6. *वही 3/11*
7. *वही 3/15* 8. *वही 3/26*
9. *वही 3/34* 10. *वही 3/37*
11. *वही 3/40* 12. *वही 4/6*
13. *वही 4/9* 14. *वही 5/3*
15. *वही 5/5* 16. *वही 5/8*
17. *वही 5/29* 18. *वही 6/46*

17

वेणीसंहार नाटक के अर्थोपक्षेपक

ममता गुप्ता

कुञ्जी शब्द -–अर्थोपक्षेपक, विष्कम्भक, प्रवेशक, विष्कम्भक, चूलिका, अङ्कावतार, अङ्कमुख,वेणीसंहार।

प्रस्तावना

नाट्यशास्त्रीय ग्रन्थों में यह व्यवस्था दी गई ही कि रङ्गमञ्च की दृष्टि से सम्पूर्ण इतिवृत्त को दो भागों में विभाजित किया जाना चाहिए। एक वह जिसे पूर्ण रूप से मञ्च पर प्रस्तुत करना किया जाना है और दूसरी वह जिसको मञ्च पर प्रस्तुत न करके केवल सूचना दे दी जाए-

द्वेधा विभागः कर्तव्यः सर्वस्यापीह वस्तुनः।
सूच्यमेव भवेत्किंचिद्- दृश्यश्रव्यमथापरम्।।[1]

प्रश्न यह उपस्थित होता है कि इतिवृत्त का कौन सा अंशसूच्य हो और कौन सा दृश्य रूप में प्रस्तुत किया जाए। इसका समाधान प्रस्तुत करते हुए दशरूपककार कहते हैं कि-

नीरसोऽनुचितस्तत्र संसूच्यो वस्तुविस्तरः।
दृश्यस्तु मधुरोदात्तरसभावनिरन्तरः।।[2]

अर्थात् इतिवृत्त के वे अंश जो नीरस हैं, रसानुकूल नहीं हैं, जिनका मञ्च पर दिखाया जाना मधुर, उदात्त (नैतिकता आदि के अनुकूल) नहीं, वे संसूच्य या सूच्य कहलाते हैं तथा इतिवृत्त के वे अंश जो माधुर्य और औदात्य से युक्त हो, रसाभिव्यञ्जक हो जिनका नाटक में प्रभावोत्पादकत्व तथा आह्लादकत्व लाने के लिए मञ्च पर प्रदर्शित करना अनिवार्य हो, वे दृश्य कहलाते हैं।

पाश्चात्य नाटकों में भी इस प्रकार के प्रयोग देखे जाते हैं। वहाँ पर भी

सम्पूर्ण कथ्य को मञ्च पर प्रदर्शित नहीं जाता, कथावस्तु के कुछ अंशों की सूचना नेपथ्य अथवा पात्रों के माध्यम से दी जाती है। इन पात्रों को मैसेंजर भी कहा गया है । प्राचीन ग्रीक नाटकों में इस प्रकार के दृश्यों को मञ्च पर दिखाए जाने का निषेध था जो मनुष्य के हृदय को विचलित कर सकते हैं। कालान्तर में पश्चिम में जो नाटक लोकप्रिय हुए उनमें दुखान्त नाटक (ट्रेजडी) प्रमुख थे जिसके कारण वहाँ पर रक्तपात, युद्ध, मृत्यु आदि के दृश्य मञ्च पर प्रदर्शित किए जाने लगे जिनका भारतीय नाट्यशास्त्र में निषेध किया गया है। पाश्चात्य परम्परा के प्रभाव से सम्प्रति भारतीय नाटकों में भी इस प्रकार की प्रवृत्ति प्रचलित हो गई है।

संस्कृत नाट्यशास्त्र में सूच्य कथावस्तु की सूचना देने के लिए जो माध्यम बताया गया है उसे अर्थोपक्षेपक की संज्ञा दी गई हैं। नाट्य की वस्तु अङ्को में विभक्त होती है। कथा का जो अंश नीरस या अनुचित होने के कारण अङ्क के माध्यम से रूप में प्रयोज्य[3] नहीं होता उस सूच्य अर्थों के उपक्षेपण की विधि विष्कम्भकादि है- **अन्या च विस्तरा सूच्या सार्थोपक्षोपकैर्बुधैः**[4] नाट्यशास्त्र मेंएक अङ्क में एक दिन की घटनाओं का वर्णन करने का निर्देश किया गया है। इससे अधिक समय में घटी घटनाओं की सूचना भी अर्थोपक्षेपक के द्वारा ही दी जाती है।

दिनावसाने कार्यं यद्दिने नैवोपपद्यते।
अर्थोपक्षेपकैर्वाच्यमङ्कच्छेदं विधाय तत्।।[5]

अर्थोपक्षकों के प्रकार -

अर्थोपक्षकों के पाँच प्रकार के हैं-

1. विष्कम्भक, 2. प्रवेशक, 3. विष्कम्भक, 4. चूलिका, 5. अङ्कावतार/अङ्कमुख

नाट्यशास्त्र में अर्थोपक्षकों का कथन इस प्रकार किया गया है-

विष्कम्भचूलिका चौव तथा चौव प्रवेशकः।
अङ्कावतारोऽङ्कमुखमर्थोपक्षेपपञ्चकम् ।।[6]

भरतमुनि के परवर्ती लगभग सभी नाट्यशास्त्रीयों ने अर्थोपक्षकों के पाँच प्रकार ही माने हैं-

अर्थोपक्षेपकैः सूच्यं पञ्चभिः प्रतिपादयेत्।
विष्कम्भचूलिकाङ्कास्याङ्कावतार प्रवेशकैः।।[7]
अर्थोपपक्षेपकाः पञ्च विष्कम्भकप्रवेशकौ।
चूलिकाङ्कावतारोऽथ स्यादङ्कमुखमित्यपि।।[8]

विष्कम्भक-- 'विष्कम्भक' पद की व्युत्पत्ति है - विष्कभ्नाति अनुसन्धानेन वृत्तमुपष्टम्भयतीति विष्कम्भकः जिससे स्पष्ट है कि यह संसूचक तथा दो अङ्कों सम्बन्धक होता है। नाट्य शास्त्र में विष्कम्भक को परिभाषित करते हुए कहा गया है-

मध्यमपुरुषनियोज्यो नाटकमुखसन्धिमात्रसंचारः।
विष्कम्भकस्तु संस्कृतपुरोहितामात्यकञ्चुकिभिः।।[9]
शुद्धः संकीर्णो वा द्विविधो विष्कम्भकस्तु विज्ञेयः।
मध्यमपात्रैः शुद्धः सङ्कीर्णो नीचमध्यकृतः।।[10]

विष्कम्भक का संयोजन मुखसन्धि में होता है। इसका प्रयोग पुरोहित, अमात्य, और कञ्चुकी आदि मध्य कोटि के पात्रों द्वारा होता है। दशरूपककार के अनुसार विष्कम्भक के माध्यम से पूर्व में घटित घटनाओं या भविष्य में घटित होने वाल घटनाओं (कथांशों) की सूचना दी जाती है-

वृत्तवर्तिष्यमाणानां कथांशानां निदर्शकः।
सङ्क्षेपार्थस्तु विष्कम्भो मध्यपात्रप्रयोजितः।
एकानेककृतः शुद्धः सङ्कीर्णो नीचमध्यमैः।।[11]

यह मध्यम पात्रों के द्वारा प्रायोजित होता है अर्थात जहाँ मध्यम पात्रों के वार्तालाप द्वारा अतीत या भावी कथांशों की संक्षेप में सूचना दी जाय विष्कम्भक नामक अर्थोपक्षेपक होता है। साहित्यदर्पण में भी इसी प्रकार का उल्लेख है-

वृत्तवर्तिष्यमाणानां कथांशानां निदर्शकः।
सङ्क्षिप्तार्थस्तु विष्कम्भो आदावङ्कस्य दर्शितः।।
मध्यमेन मध्यमाभ्यां वा पात्राभ्यां संप्रयोजितः।
शुद्धः स्यात्स तु सङ्कीर्णो नीचमध्यम कल्पितः।।[12]

विष्कम्भक शुद्ध तथा सङ्कीर्ण इस प्रकार दो तरह का होता है।

स द्विविधः, शुद्धः सङ्कीर्णश्चेत्याह एकानेककृतः शुद्धः सङ्कीर्णो नीचमध्यमः। एकेन द्वाभ्यां वा मध्यमपात्राभ्यां शुद्धो भवति, मध्यमाधम-पात्रैर्युगपत्प्रयोक्तिः, सङ्कीर्ण इति।[13] शुद्ध विष्कम्भकमध्यम पात्रों तथा सङ्कीर्ण मध्यम और निम्न दोनों पात्रों द्वारा प्रयोज्य होता है। संस्कृत नाट्य में पात्रों को तीन कोटियों में विभाजित किया गया है उत्तम, मध्यम और अधम। राजा अमात्य

पुरोहित आदि उत्तम कोटि में आते हैं और ये पात्र संस्कृत में वार्तालाप करते है। मध्यम कोटि में सामान्य जन रहते हैं यह इस श्रेणी के शिक्षित पात्र संस्कृत और अशिक्षित पात्र प्राकृत बोलते हैं। निम्न कोटि में सेवक, दास, सैनिक, चोर, व्याध आदि आते आते हैं यह निम्न कोटि की प्राकृत का प्रयोग करते हैं। शुद्ध विष्कम्भक में मध्यम पात्र होते हैं अतः इसकी भाषा संस्कृत और प्राकृत मिश्रित होती है संकीर्ण विष्कम्भक में मध्यम और निम्न दोनों पात्रों का प्रयोग होता है अतः उसकी भाषा प्राकृत होती है। साहित्यदर्पण में शुद्ध विष्कम्भक के उदाहरण के रूप में मालतीमाधव के तृतीय अङ्क के विष्कम्भक को उद्धृत किया गया है जहाँ श्मशान में उपस्थित कपालकुण्डला भूत और भावी वृत्तान्तों की सूचना देती है। सङ्कीर्ण विष्कम्भक के लिए 'रामाभिनन्द' नाटक के क्षपणक और कापालिक द्वारा प्रयुक्त विष्कम्भक को उद्धृत किया गया है-

मध्येन मध्यमाभ्यां वा पात्राभ्यां संप्रयोजितः।
शुद्धः स्यात्स तु संकीर्णो नीचमध्यमकल्पितः।।

तत्र शुद्धो यथा--मालतीमाधवे श्मशाने कपालकुण्डला। सङ्कीर्णो यथा--रामाभिन्दे क्षपणककापालिकौ।[14]

प्रवेशक -

तद्वदेवानुदात्तोक्त्या नीचपात्रप्रयोजितः।
प्रवेशोऽङ्कद्वयस्यान्तः शेषार्थस्योपसूचकः।।[15]

वस्तु की संसूचना प्रदान करने वाला दूसरा अर्थोपक्षेपक प्रवेशक है। विष्कम्भक के सामान प्रवेशक भी भूत और भविष्य की घटनाओं का सूचक होता है। इसमें निम्न कोटि के पात्रों का प्रयोग होता है। इसमें वार्तालाप अनुदात्त उक्तियों द्वारा होता तथा इसकी भाषा प्राकृत होती है। इसका प्रयोग सर्वदा दो अंकों के मध्य में होता है और यह पूर्व अङ्क के शेष कथाशों का भी सूचक होता है-

प्रकरणनाट्यविषये प्रवेशको नाम विज्ञेयः।
नोत्तममध्यमपुरुषैराचरितो नाप्युदत्तवचनकृतः।।
प्राकृतभाषाचारः प्रवेशको नाम विज्ञेयः।[16]

विष्कम्भक और प्रवेशक में मुख्यतया भेद यही है कि इस विष्कम्भक का प्रयोग अङ्क के आरम्भ में मुखसन्धि में किया जाता है तथा प्रवेशक अङ्कों के मध्य

आता है। मध्यम कोटि अथवा निम्न मध्यम कोटि के पात्रों के कारण विष्कम्भक की भाषा संस्कृत होती है या संस्कृत और प्राकृत मिश्रित हो सकती है परन्तु निम्न कोटि के पात्रों के कारण प्रवेशक की भाषा सदैव प्राकृत होती है। प्रथम अङ्क में प्रवेशक की योजना का निषेध है। साहित्यदर्पण प्रवेशक का उदाहरण वेणीसंहार से लिया गया है-

प्रवेशकोऽनुदात्तोक्त्या नीचपात्रप्रयोजितः ।
अङ्कद्वयान्तर्विज्ञेयः शेषं विष्कम्भके यथा।।
अङ्कद्वयस्यान्तरिति प्रथमाङ्केऽस्य प्रतिषेधः ।
यथा--वेण्यामश्चत्थामाङ्के राक्षसमिथुनम् ।[17]

चूलिका -

अन्तर्यवनिकासंस्थैः शून्यादिभिरनेकधा ।
अर्थोपक्षेपणं यत्तु क्रियते सा हि चूलिका।।[18]

चूलिका घटनाओं के संसूचन को एक विलक्षण विधि है। यह अर्थोपक्षेप्रण के अन्य चार प्रकारों से भिन्न है। इस अर्थोपक्षेपक में कथांश की सूचना रङ्गमञ्चीय पात्र द्वारा नहीं की जाती प्रत्युत यवनिका के भीतर विद्यमान पात्र के माध्यम से अर्थोपक्षेपक का निवेदन होता है। चूलिका में सूचना देने वाले पात्र सूत, नन्दी, वैतालिक आदि होते हैं। विष्कम्भक और प्रवेशक की योजना अङ्क के आरम्भ या दो अङ्कों के मध्य में होती है किन्तु चूलिका का प्रयोग अङ्क के मध्य में होता है। दशरूपक में चूलिका के दो उदाहरण दिए गए है। प्रथम भवभूति कृतउत्तररामचरितम् के द्वितीय अङ्क से लिया गया है-

अन्तर्जवनिकासंस्थैश्चचूलिकार्थस्य सूचना।

नैपथ्यपात्रेणार्यसूचनं चूलिका, ययोत्तरचरिते द्वितीयाङ्कस्यादौ - (नेपथ्ये) स्वागतं तपोधनाः (ततः प्रविशति तपोधना) इति नेपथ्यपात्रेण- वासन्तिकयात्रेयी सूचनात् च्चूलिका।[19] उत्तररामचरित के द्वितीय अङ्क के आरम्भ में आत्रेयी के आगमन पर वनदेवी नेपथ्य से उसका स्वागत करती है - (नेपथ्य में) तपोधना भगवती का स्वागत हो। (तब आत्रेयी मञ्च पर प्रवेश करती है)। इस प्रकार नेपथ्य पात्र वासन्ती के द्वारा आत्रेयी के आगमन की सूचना दी गई है, अतः यह चूलिका है। द्वितीय उद्धरण भवभूति के ही महावीरचरित के चतुर्थ अङ्क से उद्धृत है-

चूलिका के उदाहरण को ग्रहण किया गया है- यथा वा वीरचरिते चतुर्थाङ्कस्यादौ--" (नेपथ्ये) भो भो वैमानिकाः प्रवर्तन्तां रङ्गमङ्गलानि कृशाश्वन्तेवासी जयति भगवान्कौशिकमुनिः,

सहस्रांशोर्वशे जगति विजयि क्षात्रमधुना।
विनेता क्षात्रारेर्जगदभयदानव्रतधरः,
शरण्यो लोकानां दिनकरकुलेन्दुर्विजयते।।
इत्यत्र नेपथ्यपात्रैर्देवैरामेण परशुरामो जितइति सूचनात् च्चूलिका।[20]

यहां पर नेपथ्य के पात्रों द्वारा भगवान राम ने परशुराम को जीत लिया है यह सूचना दी गई है अतः यहां पर चूलिका नामक अर्थोपक्षेपक है। साहित्यदर्पण में भी चूलिका के इसी उदाहरण को प्रस्तुत किया गया है –

अन्तर्जवनिकासंस्थैः सूचनार्थस्य चूलिका ।
यथा वीरचरिते चतुर्थाङ्कस्यादौ--(नेपथ्ये) भो भो वैमानिकाः प्रवर्तन्तां रङ्गमङ्गलानि इत्यादि। रामेण परशुरामो जितः इति नेपथ्ये पात्रैः सूचितम्।[21]

अङ्कावतार -

अङ्कान्तरेऽथवाङ्के निपतति यस्मिन् प्रयोगमासाद्य।
बीजार्थ युक्तियुक्तो ज्ञेयो ह्यङ्कावतारोऽसौ।।[22]

एक अङ्क के समाप्त होते होते अङ्क का विच्छेद हुए बिना दूसरे अङ्क की कथावस्तु का सङ्केत कर दिया जाता है उस सङ्केत से मानो अग्रिम अङ्क का अवतरण हो जाता है। ऐसे स्थलों पर अङ्कावतारनामक अर्थोपक्षेपक होता है इसमें वीजार्थ की योजना होती है। दशरूपक में अङ्कावतार को इस प्रकार परिभाषित किया गया है-

अङ्कावतारस्त्वङ्कान्ते पातोऽङ्कस्याविभागतः।
एभिः संसूचयेत् सूच्यं दृश्यमङ्कैः प्रदर्शयेत्।।[23]

जब प्रथम अङ्क के पात्र ही किसी भावी घटना की सूचना दें दें और वहाँ पर विष्कम्भक, प्रवेशक आदि की योजना न की जाए तथा वे ही पात्र उस कथा को बिना विच्छिन्न किये ही दूसरे अङ्क में प्रवेश करें, वह अङ्कावतार है। उदाहरण स्वरुप मालविकाग्निमित्रम् के प्रथम अङ्क को उद्धृत किया गया। प्रथम के अङ्क अन्त में विदूषक इस वाक्य के द्वारा भावी अङ्क की वस्तु की सूचना देता है -

तो तुम दोनों देवी के प्रेक्षागृह में जाकर सङ्गीत रचना करके महराज के

पास दूत भेज देना, अथवा मृदङ्ग का शब्द हमें यहाँ से उठा देगा। तदनन्तर मृदङ्ग के शब्द को सुन कर सभी मञ्च से चले जाते हैं। दूसरे अङ्क के आरम्भ में वे ही सारे पात्र मञ्च पर आते हैं और प्रथम अङ्क में वर्णित घटनाक्रम ही प्रदर्शित होता हैं। इस प्रकार प्रथम अङ्क की कथा अविच्छिन्न रूप में ही द्वितीय अङ्क में अवतरित हुई है, अतः यह अङ्कावतार है।[24] साहित्यदर्पण में अङ्कावतार के उदाहरण के रूप में अभिज्ञानशाकुन्तल का पञ्चमाङ्क उद्धृत किया गया है-

अङ्कान्ते सूचितः पात्रैस्तदङ्कस्याविभागतः ।।

यत्राङ्कोऽवतरत्येषोऽङ्कावतार इति स्मृतः। यथा---अभिज्ञाने पञ्चमाङ्के पात्रैः सूचितः षष्ठाङ्कस्तदङ्कस्याङ्ग विशेष इवावतीर्णः।[25]

अङ्कमुख-

विष्लिष्टमुखमङ्कस्य स्त्रिया वा पुरुषेण वा।
यत्र संक्षिप्यते पूर्व तदङ्कमुखमुच्यते।।[26]

अङ्कमुख में समस्त कथा की सूचना दी जाती है इसकी योजना प्रायः अङ्क के प्रारम्भ में होती है। इसमें भावी कथावस्तु का शिलिष्ट रूप में उपक्षेपण किया जाता है इसके प्रयोक्ता स्त्री या पुरुष पात्र दोनों हो सकते हैं साहित्यदर्पण में अङ्कमुख इस प्रकार से उल्लिखित है।

यत्र स्यादङ्क एकस्मिन्नङ्कानां सूचनाऽखिला।।
तदङ्कमुखमित्याहुर्बोजार्थख्यापकं च तत्।[27]

यहाँ एक ही अङ्क में समस्त अङ्कों की सूचना दी जाती है वह अङ्कमुख होता है। इसमें बीज और अर्थ का संक्षिप्त उपक्षेपण होता है यथा–

मालतीमाधव के प्रथमाङ्क के आदि में कामन्दकी और अवलोकिता भूरिवसु प्रभृति की भावी भूमिकाओं तथा संक्षिप्त कथा प्रबन्ध सूचित कर दिया गया है।[28]

अङ्कास्य -

दशरूपककार ने पाँच अर्थोपक्षेपकों में चतुर्थ अर्थोपक्षेपक के रूप में अङ्कास्य का निरूपण किया है जबकि आचार्य भरत ने अङ्कास्य नामक अर्थोपक्षेपक का कथन नहीं किया है वे अर्थोपक्षेपकों में अङ्कास्य के स्थान पर अङ्क मुख्य को कहते हैं।

दशरूपक में अङ्कास्य का निरूपण इस प्रकार है-

अङ्कान्तपात्रैरङ्कास्यं छिन्नाङ्कस्यार्थसूचनात्।[29]

जहाँ एक अङ्क की समाप्ति के समय उस अङ्क में प्रयुक्त पात्रों के द्वारा किसी छिन्नअर्थ की सूचना दी जाय, वहाँ अङ्कास्य कहलाता है। अङ्क के अन्त के पात्र जहाँ उस छूटे हुए कथावस्तु की सूचना देते हैं जिसका वर्णन अगले अङ्क में आयगा वहाँ अङ्कास्य होता है। जैसे महावीरचरित के दूसरे अङ्क के अन्त में सुमन्त्र (पात्र) आकर शतानन्द तथाजनक की कथा का विच्छेद कर, भावी अङ्क के आरम्भ की सूचना देता है तथा अङ्क समाप्त हो जाता है। इसके बाद अगले अङ्क में वशिष्ठ विश्वामित्र तथा परशुराम बैठे हुए प्रवेश करते है। अतः यहअङ्कास्य है।

(प्रविश्य) सुमन्त्रः - भगवन्तौ वसिष्ठविश्वामित्रौ भवतः सभार्गवानाह यतः ।

इतरे—क भगवन्तौ?

सुमन्त्रः- महाराजदशरथस्यान्तिके ।

इतरे-तदनु रोषात्तत्रैव गच्छामः इत्यङ्कसमाप्तौ ।[30]

अङ्कास्य और अङ्कमुख दोनों की परिभाषा में भेद है जहाँ अङ्कास्य में पूर्व में किसी छिन्न अर्थ की सूचना देकर उसे ही आगामी अङ्क में प्रस्तुत किया जाता है वहीं अङ्क मुख्य में एक ही अङ्क में अग्रिम समस्त अङ्कों की कथावस्तु की सूचना संक्षेप में दे दी जाती है।

साहित्यदर्पण में पञ्चम अर्थोपक्षेपक के रूप में अङ्कमुख का ही वर्णन किया गया है। उन्होंने अङ्कमुख का वर्णन करने के पश्चात् अङ्कास्य का भी वर्णन कर दिया है और धनञ्जय व धनिक कृत परिभाषा देकर वही उदाहरण दिया है-

अङ्कान्तपात्रैरङ्कास्यं छिन्नाङ्कस्यार्थ सूचनात् ।।[31]

अङ्कास्य का वर्णन करने बाद यह स्पष्ट कर दिया है कि यह मत धनञ्जय व धनिक के मतानुसार है अन्यथा अन्य नाट्याचार्य अङ्कावतार से अङ्कास्य का अभेद मानते हैं-

एतच्च धनिकमतानुसारेणोक्तम् । अन्ये तुं--अङ्कावतरणोनैवेदं गतार्थम्इत्याहुः ।[32]

वेणीसंहार के अर्थोपक्षेपक -

वेणीसंहारसप्तम शताब्दी के नाटककार भट्टनारायण द्वारा रचित नाटक है। इसका उपजीव्य ग्रन्थ महाभारत है। वीररस-प्रधान नाटकों में वेणीसंहार का विशिष्ट स्थान है। इसमें 6 अङ्क है। महाभारत के युद्ध के प्रारम्भ से अन्त तक के कथानक को वेणीसंहार में नाट्य रूप में प्रस्तुत किया गया है। भीम, युधिष्ठिर,

दुर्योधन, कर्ण, अश्वत्थामा इसके मुख्य पात्र है। स्त्री पात्रों में द्रौपदी और भानुमति का प्रमुखता से चित्रण है। शास्त्रीय दृष्टि से वेणीसंहार अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। इसका विन्यास नाट्यशास्त्रीय प्रतीमानों के अनुरूप किया गया है। इसमें पञ्च-अर्थ प्रकृतियों, पञ्च-कार्यावस्थाओं एवं पञ्च-सन्धियों का स्पष्टता से परिपालन किया गया है। नाट्याचार्यों ने नाट्यशास्त्रीय सिद्धान्तों के उद्धरण के लिए इसे आदर्श मानकर इसका बहुतायत से प्रयोग किया है। वेणीसंहार का कथानक अत्यन्त विस्तृत है। इसमें युद्ध, वध, मृत्यु आदि के घटनाओं का समावेश हैं। नाट्यशास्त्र के अनुसार युद्ध, वध, मृत्यु को मञ्च पर प्रस्तुत नही करना चाहिए। अतः ऐसी घटनाओं को अर्थोपक्षेपकों के माध्यम से सूचित किया गया है। वेणीसंहार में विष्कम्भक तथा प्रवेशक इन दो अर्थोपक्षेपकों का प्रयोग किया गया है। प्रथम और द्वितीय अङ्क के मध्य विष्कम्भक और द्वितीय तथा तृतीय अङ्क के मध्य प्रवेशक का प्रयोग है।

किसी भी नाटक का प्रारम्भ मङ्गलाचरण के पश्चात् प्रस्तावना से होता है वहाँ पर यदि कोई नीरस या अदर्शनीय घटना की सम्भावना हो अथवा प्रस्तुत की जाने वाली कथा का सूत्र पूर्ववर्ती घटनाओं से जुड़ा हुआ हो और उसकी सूचना देना अपेक्षित हो तो प्रस्तावना के तुरन्त बाद विष्कम्भक की योजना की जाती है। परन्तु यदि कथा प्रस्तावना के तुरन्त बाद ही प्रारम्भ हो जाए तो वहाँ विष्कम्भक की आवश्यकता नहीं पड़ती-

अपेक्षितं परित्याज्यं नीरसं वस्तु विस्तरम्।
यदा संदर्शयेच्छेषमामुखानन्तरं तदा।।
कार्यो विष्कम्भको नाट्य आमुखाक्षिप्तपात्रकः।
यदा तु सरसं वस्तु मूलादेव प्रवर्तते।।
आदावेव तदाङ्केस्यादामुखाक्षेपसंश्रयः।[33]

वेणीसंहार में प्रस्तावना के पश्चात् ही मुख्य कथा का प्रारम्भ हो जाता है। प्रस्तावना में सूत्रधार और पारिपार्श्विक द्वारा शिलिष्ट पद्यों के माध्यम से कथा की सूचना दे दी जाती है। तत्पश्चात् मुख्य पात्र का प्रवेश होता है तथा मुख्य घटनाक्रम आरम्भ हो जाता है अतः यहाँ विष्कम्भक का प्रयोग नहीं किया गया है।

वेणीसंहार में विष्कम्भक की योजना प्रथम और द्वितीय अङ्क के मध्य में

की गई है। द्वितीय अङ्क के आरम्भ में विनयन्धर नामक कञ्चुकी प्रवेश करता है जिसके द्वारा ज्ञात होता है कि कर्ण, जयद्रथ आदि सेनापतियों ने मिलकर अभिमन्यु का वध कर दिया है। दुर्योधन अभिमन्यु-वध से बहुत प्रसन्न है। वह शीघ्र ही भानुमति के पास जाकर यह समाचार देना चाहता है और कर्ण, जयद्रथ आदि सेनापतियों का सम्मान करना चाहता है-

(ततः प्रविशति कचुकी)

कञ्चुकी - आदिष्टोऽस्मि महाराज दुर्योधनेन विनयन्धर, सत्वरं गच्छ त्वम्। अन्विष्यतां देवी भानुमती। अपि निवृत्ता अम्बायाः पादवन्वनसमयान्नवेति। यतस्तां विलोक्य निहिताभिमन्यवो राधेयजयद्रथभृतयोऽस्मत्सेना पतयः समरभूमि गत्वा सभाजयितव्याः इति।[34]

विष्कम्भक के माध्यम से यह सूचना भी दी गई है कि भानुमति अशुभ की आशङ्का से व्याकुल है और उसने अपने पति की युद्ध विजय की कामना से व्रत धारण किया है-

(परिक्रम्य दृष्ट्वा आकाशे) विहङ्गिके, अपि श्वश्रुजनपादवन्दनं कृत्वा प्रतिनिवृत्ता भानुमती। (कर्णं दत्त्वा) कि कथयसि आर्य, एषा भानुमती देवी पत्युः समर विजयाशसया निवर्तित गुरुदेव- पाद वन्दनाऽद्यप्रभृत्याब्धनियमा बालोद्याने तिष्ठतीति।[35]

इस विष्कम्भक के माध्यम से दुर्योधन के चरित्र पर भी प्रकाश डाला गया है कञ्चुकी का कथन है कि स्वामी अब भी अन्तःपुर मे विहार का उपभोग कर रहे हैं, जबकि उनके शत्रु पाण्ड के पुत्र, जिनके वासुदेव सहायक है युद्ध के लिए तत्पर है-

साधु परिव्रते साधु। स्त्री भावेऽपि वर्तमाना वरं भवतो न पुनर्महाराजः, योऽयमुद्यतेषु बलवत्स्णबलवत्सु वा वासुदेव सहायेषु पाण्डुपुत्रेस्वरिष्विद्याप्यन्तःपुर विहारमनुभवति।[36]

दुर्योधन भीष्म की पराजय पर व्यथित न होकर अभिमन्यु के वध पर प्रसन्न हो रहा है दुर्योधन के इस कार्य को भी कञ्चुकी अनुचित बताता हुआ कहता है-

(विचिन्त्य) इदमपरमयथातथं स्वामिनश्चेष्टितम्। कुतः

आ शस्त्रग्रहणादकुण्ठपरशोस्तस्यापि जेता मुने-

स्तापायास्य न पाण्डुसुनुभिरयं भीष्मः शरैः शायितः।
प्रौढ़ानेकधनुर्धरारिविजयश्रान्तस्य चौकाकिनो
बालस्यातमरातिलूनधनुषः प्रीतोऽभिमन्योर्वधात्।।[37]

यह स्वामी का दूसरा अनुचित कार्य है कि दुर्योधन शरशैय्याशायी भीष्म की पराजय से व्यथित न होकर के अनेक धनुर्धारियों द्वारा जीते गए अकेले अभिमन्यु के वध से प्रसन्न हो रहा है। (सोवकर) यह स्वामी का दूसरा अनुचित कार्य है क्योंकि आयुध-ग्रहण से लेकर कभी कुण्ठित न हुए परशु वाले उस प्रसिद्ध मुनि (परशुराम) को जीतने वाला यह भीष्म पाण्डुपुत्रों द्वारा बाणों से सुला दिया जाने पर इस (दुर्योधन) के दुःख के लिये न हुआ, (जबकि यह बड़े-बड़े अनेक धनुर्धारी शत्रुओ को जीतने से थके हुए शत्रुओं द्वारा काटी गई धनुष वाले और अकेले, बालक अभिमन्यु के वध से प्रसन्न हो रहा है।

वेणीसंहार के प्रथम अङ्क में श्रीकृष्ण का पाण्डवों के दूत के रूप में सन्धि प्रस्ताव लेकर कौरव सभा में जाना, सन्धि प्रस्ताव पर भीम का रोष, भीम द्वारा प्रतिज्ञा पूर्ति का संकल्प, युद्ध की घोषणा से भीम की प्रसन्नता का वर्णन है। अङ्क के अन्त में भीम सहदेव के साथ युद्धभूमि के लिए प्रस्थान करते हैं। द्वितीय अङ्क में प्रसन्न दुर्योधन अभिमन्यु के वध का समाचार सुनाने के लिए से अपनी रानी भानुमती के प्रासाद में जाता है। दुर्योधन और भानुमति के मध्य शृङ्गार रस का वर्णन किया गया है। इन दोनों घटनाओं के मध्य लगभग 13 दिनों का अंतराल है।

नाट्यशास्त्रीय ग्रन्थों में निर्देश दिया गया है कि एक अङ्क में एक दिन की घटनाओं का वर्णन करना चाहिए इससे अधिक समय में घटी घटनाओं की सूचना भी अर्थोपक्षेपक के द्वारा ही दी जानी चाहिए।[38]

अतः यहाँ पर विष्कम्भक की योजना की गई है तथा प्रेक्षकों को सूचना दे दी गई है कि महाभारत का युद्ध आरम्भ हो चुका है। भीष्म पाण्डवों द्वारा पराजित हो चुके हैं और कर्ण, जयद्रथ आदि सेनापतियों द्वारा अभिमन्यु का वध कर दिया गया है।

वेणीसंहार का यह विष्कम्भक शास्त्रीय दृष्टि से शुद्ध विष्कम्भक है। शुद्ध विष्कम्भक में पुरोहित, अमात्य, और कञ्चुकी आदि मध्यम कोटि के पात्र होते हैं तथा इसकी भाषा संस्कृत और प्राकृत मिश्रित होती है। प्रथम और द्वितीय अङ्क के

मध्य में विनियोजित विष्कम्भक में कञ्चुकी ही एक मात्र पात्र है और वह संस्कृत भाषा का प्रयोग करता है। इसके माध्यम से न केवल पूर्व में हुई सूचना घटनाओं की सूचना प्राप्त होती है अपितु भविष्य में होने वाले घटनाओं के सङ्केत भी प्राप्त हो जाते है। यह विष्कम्भक दुर्योधन और भानुमति की चारित्रिक विशेषताओं को भी स्पष्ट करता है। दुर्योधन जहाँ कामी, पाण्डवों से द्वेष करने वाला तथा अनेक सेनापतियों द्वारा मिलकर अभिमन्यु का वध किए जाने जैसे अनुचित कृत्य पर प्रसन्न होने वाले व्यक्ति के रूप में चित्रित है वहीं भानुमति का चित्रण पतिव्रता एवं पति के अनिष्ट की आकाङ्क्षा से भीरू स्त्री के रूप में किया गया है।

वेणीसंहार में सूच्य कथावस्तु को प्रस्तुत करने के लिए द्वितीय तथा तृतीय अङ्क के मध्य प्रवेशक नामक अर्थोपक्षेपक का नियोजन किया गया है। इस प्रवेशक में रुधिरप्रिय नामक राक्षस एवं वसागन्धा नामक राक्षसी के मध्य वार्तालाप के द्वारा युद्ध की विभीषिका का वर्णन किया गया है। चारों ओर सहस्रों योद्धाओं के क्षतविक्षत शव बिखरे हुए हैं। रक्त, मांस, मज्जा, वसा से सम्पूर्ण रणभूमि सङ्कुल है। इसमें जयद्रथ, घटोत्कच, भगदत्त, भुरिश्रव, सोमदत्तआदि योद्धाओं के वध की सूचना दी गई है। प्रवेशक के अन्त में धृष्टद्युम्न के द्वारा द्रोण के वध की घटना भी सूचित की गई है।

द्वितीय अङ्क के अन्त में जयद्रथ की माता और उसकी पत्नी दुःशला (दुर्योधनकी बहिन) विलाप करते हुए आती हैं और दुर्योधन को समाचार देती हैं कि अर्जुन ने सूर्यास्त से पहले जयद्रथवध की प्रतिज्ञा की है। दुर्योधन उन दोनों को सान्त्वना देता है और युद्धभूमि की ओर प्रस्थान करता है। तृतीय अङ्क में द्रोणाचार्य के वध पश्चात् का घटनाक्रम वर्णित है। द्वितीय अङ्क एवं तृतीय अङ्क में प्रस्तुत घटनाओं के मध्य के कथानक की सूचना इस अर्थोपक्षेपक में दी गई। यद्यपि यह अर्थोपक्षेपकदो अङ्कों के मध्य आया है तथापि निम्न कोटि के पात्रों और प्राकृत भाषा के कारण इसे प्रवेशक कहा गया।[39]

वेणीसंहार के प्रवेशक के द्वारा न केवल पूर्व में घटी घटनाओं की सूचना दी जा रही है भविष्य में होने वाली घटना की थी सूचना दी गई है-

राक्षसी - लुहिप्पिआ, किणिमित्त कुमालभीमशेणश्श पिट्टदोणुपिट्ठ आहिण्डीअदि।
(रुधिरप्रिय, किनिमित्त कुमार भीमसेनस्य पृष्ठतोऽनुपृष्ठमाहिण्डयते।)
राक्षसः - वसागन्ये, तेन हि शामिणा विपोदलेण दुश्शाशणश्श लुहिलं पादु

पडिण्णादम् । तच अह्म हि लक्खशेहि अणुप्पविशिअ पादव्यति । । (वसागन्धे, तेन हि स्वामिना वृकोदरेण दुपासनस्य रुधिरं पातुं प्रतिज्ञातम्। तच्चास्माभीराक्षसैरनुप्रविश्य पातव्यमिति।)[40]

जैसा कि राक्षस कहता है कि हिडिम्बा ने उसेभीम का अनुसरण करने के लिए नियुक्त किया है क्योंकि प्रतिज्ञानुसार भविष्य में भीम दुशासन का वध करके उसके वक्षस्थल के रक्त का पान करने वाले हैं।(रक्तपान मनुष्य का धर्म नहीं है इसलिए) उस रक्त का पान भीम के अन्दर प्रवेश कर के राक्षसों को ही करना होगा। इससे यह भी सूचना प्राप्त होती है कि आगे युद्ध और अधिक भीषण होने वाला है।

निष्कर्ष –

वस्तुतः अर्थोपक्षेपक नाट्यशास्त्रयों के द्वारा की गई वह व्यवस्था है जिसके द्वारा वह कथांश प्रेक्षकों तक पहुँचा दिया जाता है जिसे मञ्च पर दिखाया जाना सम्भव नहीं है अथवा उचित नहीं है, जो कथांश रस का उपकारक नहीं है किन्तु कथा के प्रवाह के लिए प्रेक्षकों को जानना आवश्यक है। इसके अतिरिक्त अर्थोपक्षेपक कथानक में आने वाले अन्तराल अर्थात् अङ्कों के मध्य वर्णित कथांश के बीच में आने वाले अन्तराल में घटी घटनाओं को सम्मुख लाने का माध्यम भी हैं, साथ ही अर्थोपक्षेपक नाट्य में प्रेक्षकों की रुचि बनाए रखने के लिए आगामी अङ्कों की कथा की सूचना भी देते हैं।

वेणीसंहार जैसे वीररस प्रधान नाटकों में जहाँ युद्ध, वध, मृत्यु आदि कथावस्तु में अनेक ऐसे अंश होने की संभावना है जिन्हें मञ्च पर अभिनीत नहीं किया जा सकता है, ऐसे में इन्हें सूच्य कथावस्तु के रूप में प्रस्तुत करना होता है जिसके कारण अर्थोपक्षेपकों का महत्त्व और अधिक बढ़ जाता है। भट्टनारायण ने विष्कम्भक और प्रवेशक के सटीक प्रयोग से भूत-भविष्य के सूच्य कथाशों को प्रस्तुत करने के साथ अङ्कों में वर्णित घटनाक्रमों को परस्पर सम्बद्धता प्रदान करने का कार्य भी सिद्ध किया है।

संदर्भ -

1. *दशरूपक 1/56*
2. *दशरूपक 1/56*
3. *अङ्केषु अदर्शनीया कथा युद्धादि कथा। साहित्यदर्पण 6/52*

4. साहित्यदर्पण 6/52
5. साहित्यदर्पण 6/52
6. नाट्यशास्त्र 19/108
7. दशरूपक 1/58
8. साहित्यदर्पण 6/54
9. साहित्यदर्पणसत्यव्रत सिंह, परिच्छेद 6, पृ. 392
10. नाट्यशास्त्र 19/109, 110
11. दशरूपक 1/59, 60
12. साहित्यदर्पण 6/55,56
13. दशरूपक 1/59, 60 की वृत्ति
14. साहित्यदर्पण 6/56
15. दशरूपक 1/60,61
16. नाट्यशास्त्र 19/112,113
17. साहित्यदर्पण 6/57
18. नाट्यशास्त्र 19/111
19. दशरूपक 1/61, वृत्ति
20. दशरूपक 1/61 की वृत्ति
21. साहित्यदर्पण 6/58,वृत्ति
22. नाट्यशास्त्र 19/115
23. दशरूपक 1/61, 62
24. दशरूपक 1/61 की वृत्ति
25. साहित्यदर्पण 6/58, वृत्ति
26. नाट्यशास्त्र 19/116
27. साहित्यदर्पण 6/59, 60
28. मालतीमाधवे प्रथमाङ्कादौ कामन्दक्यवलोकिते भूरिवसुप्रभृतीनां भाविभूमिकानां परिक्षिप्तकथाप्रबन्धस्य च प्रसङ्गात्संनिवेशं सूचितवत्यौ। साहित्यदर्पण 6/60 की वृत्ति
29. दशरूपक 1/62
30. दशरूपक 1/62की वृत्ति

31. साहित्यदर्पण 6/60

32. साहित्यदर्पण 6/60 की वृत्ति

33. साहित्यदर्पण 6/61, 62, 63

34. वेणीसंहार अङ्क 2 (विष्कम्भक)

35. वही

36. वही

37. वेणीसंहार 2/2

38. दिनावसाने कार्यं यद्दिने नैवोपपद्यते ।
अर्थोपक्षेपकैर्वाच्यमङ्कच्छेदं विधाय तत् ।। साद-6.53 ।।

39. प्रकरणनाट्यविषये प्रवेशको नाम विज्ञेयः ।
नोत्तममध्यमपुरुषैराचरितो नाप्युदत्तवचनकृतः ।।
प्राकृतभाषाचारः प्रवेशको नाम विज्ञेयः । नाट्यशास्त्र 19/112,113

40. वेणीसंहार 3 अङ्क का आरम्भ

18

वेणीसंहार में नाट्य सन्धियाँ

आरती मीणा

भट्टनारायण संस्कृत के महान् नाटककार थे। 'वेणीसंहार' भट्टनारायण द्वारा विरचित संस्कृत का प्रसिद्ध नाटक है। विद्वान् लोग इसे नाट्यशास्त्र के सिद्धान्तों के अनुकूल लिखा गया नाटक मानते है इसी कारण उदाहरण स्वरूप लक्षण ग्रन्थों में इसके श्लोकों को उद्धृत किया गया है। इस नाटक का आधार महाभारत को बनाया गया है। वेणी का अर्थ है 'केश' अर्थात् 'चोटी' और संहार का अर्थ है 'सजाना, व्यवस्थित करना या गुम्फन करना।'

वेणीसंहार एक नाटक है, नाटक का लक्षण यह है कि-

नाटकं ख्यातवृत्तंस्यात्पञ्चसन्धिसमन्वितम्। विलासदर्ध्यादिगुणवद्युक्तंनानाविभूतिभिः।। सुखदुःखसमुद्भूतिनानारसनिरन्तरम्। पञ्चादिकादशपरास्तत्रङ्काः परिकीर्तिता।। प्रख्यातवंशोराजर्षिर्धीरोदात्तः प्रतापवान्। दिव्योऽथदिव्यादिव्यो वा गुणवान्नायकोमतः।। एक एव भवेदङ्गी शृङ्गारो वीर एव वा। अङ्गमन्ये रसाः सर्वेकार्योनिर्वहणोऽद्भुतः।। चत्वारः पञ्च वा मुख्याः कार्यव्यापृतपुरुषाः। गोपुच्छप्रसमाग्रंतुबन्धनंतस्य कीर्तितम्।।[1]

उक्त लक्षण वेणीसंहार नाटक पर पूर्णतया घटित होता है। वेणीसंहार का नामकरण द्रौपदी के अपमान और प्रतिशोध की घटना से सम्बन्धित है। भीम, दुःशासन और दुर्योधन द्वारा किए गए अपमान का बदला लेने के लिए दुःशासन को मारकर उसकी छाती के रक्त का पान करने और दुर्योधन की जंघाओं को गदा से तोड़कर उसके रक्त से लाल हुए अपने हाथों से द्रौपदी के बालों को संवारने की प्रतिज्ञा करता है। चन्द्रवंशी राजा युधिष्ठिर धीरोदात्त नायक है। वीर प्रधान रस है और करुण, शृङ्गार तथा वीभत्स अंग रस है। यह नाटक पाँचों सन्धियों से युक्त है और 6 अंकों में समाप्त हुआ है।

संस्कृत नाटकों की रचना करते समय नान्दी, प्रस्तावना, भरतवाक्य, अर्थप्रकृतियाँ, कार्यावस्थाएँ, सन्धियाँ, अर्थोपक्षेपक आदि अनेक नाट्यशास्त्रीय तत्त्वों या नियमों का पालन किया जाता है। इन्हीं के आधार पर नाटक का सांगोपांग वर्णन किया जाता है और नाट्यशास्त्रीय दृष्टि से उचित कहा जाता है। नाटकीय कथावस्तु में कई कथांशों का निबन्धन रहा करता है। उन प्रत्येक कथांशों का प्रयोजन भी भिन्न-भिन्न हुआ करता है। एक ही प्रयोजन को लक्ष्य में रखकर जहाँ भिन्न कथांश परस्पर अन्वित कर दिये जाते हैं वहाँ पर उन भिन्न कथांशों का अवान्तर प्रयोजन से सम्बन्धित होना ही सन्धि है। नाट्य दर्पणकार के अनुसार नाटक के कथांश परस्पर अपने रूप से अंगों के साथ मिलते है। यही मिलन सन्धि कहलाता है -

मुख्यस्य स्वतन्त्रस्य महावाक्यार्थस्यांशभागाः।
परस्परंस्वरूपेण चाढ़ेगसन्धीयन्तइतिसन्धयः।।[2]

सन्धियों को पाँच भागों में विभाजित किया जाता है -

➢मुख, ➢प्रतिमुख, ➢गर्भ, ➢विमर्श, ➢निर्वहण

सन्धि का अर्थ है - जोड़ अर्थात् सन्धान करना। इससे कथानक का सन्धान उचित रूप से हो जाता है। इससे निषिद्ध कथाओं का परित्याग भी सफलतापूर्वक किया जा सकता है। नाटक में चमत्कार लाने के लिए भी इन सन्ध्यंगों की सहायता ली जाती है।

नाटक, प्रकरण, नाटिका और प्रकरणी में समस्त सन्धियों का होना आवश्यक है, क्योंकि उपर्युक्त रूपकों में पाँचों अवस्थाओं का निबन्धन रहता है। आवश्यकतानुसार मुख और निर्वहण-इन दो संधियों के अतिरिक्त अन्य समस्त संधियों का हम परित्याग कर सकते हैं। नाट्य दर्पणकार के मतानुसार पंचसन्धियों में पंचअवस्थाओं का उपनिबन्धन आवश्यक है। जब पाँच अर्थप्रकृतियों तथा पाँचकार्यावस्थाओं का क्रमशः परस्पर योग या सम्बन्ध होता है तो पाँचसन्धियाँ बनती है।[3] वे इस प्रकार हैं -

अर्थप्रकृतियाँ	**कार्यावस्थाएँ**	**सन्धियाँ**
बीज	आरम्भ	मुख सन्धि
बिन्दु	प्रयत्न	प्रतिमुख सन्धि

पताका	प्राप्त्याशा	गर्भसन्धि
प्रकरी	नियताप्ति	विमर्शसन्धि
कार्य	फलागम	निर्वहणसन्धि

मुख सन्धि - बीज तथा आरम्भ के संयोग से मुख सन्धि बनती है। यह प्रथम सन्धि है। यह प्रस्तावना के बाद आरम्भ होती है। इस सन्धि में नाना अर्थ और रस के योग से बीज की उत्पत्ति होती है। आरम्भ अवस्था साथ होने के कारण तथा प्रधानवृत्त के मुख के समान होने के कारण इसे मुख सन्धि कहते हैं। इस सन्धि में बीज की उत्पत्ति का आरम्भ और शृङ्गारादि रसों का आश्रय रहता है। भरत ने इसके 12 भेद बताएँ हैं[4] - उपक्षेप, परिकर, परिन्यास, विलोभन, युक्ति, प्राप्ति, समाधान, विधान, परिभावना, उद्भेद, करण और भेद।

वेणीसंहार के सम्पूर्ण प्रथम अंक में प्रस्तावना के उपरान्त मुख सन्धि विद्यमान है। राज्य प्राप्ति तथा द्रौपदी केश संयमन रूपी लक्ष्य इसी अंक में हुआ है। इस लक्ष्य की प्राप्ति तभी सम्भव हो सकती है जबकि युद्ध का आरम्भ हो तथा युद्ध में दुर्योधन, दुःशासन आदि कौरवों का संहार हो। युधिष्ठिर ने इसी अंक में युद्ध की घोषणा की और इसी अंक में युधिष्ठिर के क्रोध रूपी बीज की उत्पत्ति होती है तथा इसी बीज की उत्पत्ति के साथ इसी अंक में भीम दुर्योधन के रक्त से द्रौपदी के केशों को बान्धने की इच्छा व्यक्त करता है -

चंचद्भुजभ्रमितचण्डगदाभिधात-संचूर्णितोरुयुगलस्य सुयोधनस्य।
स्त्यानापविद्धघनशोणितशोणपाणि-रुत्तंसयिष्यति कचांस्तवदेविभीमः।।[5]

अतः यहाँ पर मुख सन्धि है।

प्रतिमुख सन्धि - मुख सन्धि के उपरान्त प्रतिमुख सन्धि आरम्भ होती है। यह बिन्दु तथा प्रयत्न के मेल से बनती है। इस सन्धि में बीज का उद्घाटन होता है। मुख सन्धि में बीज का जो सूक्ष्म रूप से निर्देश किया जाता है, उसका प्रतिमुख सन्धि में अधिक स्पष्ट रूप से विकास होता है। नाट्यशास्त्रियों के अनुसार जहाँ बीज कभी स्पष्ट रूप से परिलक्षित हो तथा कभी अपरिलक्षित हो वहाँ लक्ष्यालक्ष्य रूप में बीज के प्रकटित होने पर प्रतिमुख सन्धि होती है।[6] भरतमुनि ने इसके 13 भेद बताएें हैं[7] - विलास, परिसर्प, विधूत, तापन, नर्म, नर्मद्युति, प्रगमन, निराध, पर्युपासन, वज्र, पुष्प, उपन्यास, वर्णसंहार।